धर्म-वीर सुदर्शन

*

काव्यकार
उपाध्याय अमर मुनि

*

प्रकाशक
सन्मति ज्ञानपीठ-आगरा

*

चतुर्थ संस्करण
सम्वत् २०२२

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
एजुकेशनल प्रेस, आगरा

सूचनिका





प्रकाशकीय



आज मुझे बडी प्रसन्नता है, कि श्रद्धेय कविजी महाराज के द्वारा रचित 'धर्म-वीर सुदर्शन' का नवीन सस्करण कराने का सौभाग्य सन्मति ज्ञानपीठ को मिला है। इसका सबसे पहला प्रकाशन तब हुआ था, जब कि सन्मति ज्ञानपीठ की सस्थापना नही हुई थी। अत इसका प्रकाशन उस समय समाज-भूषण, दानवीर सेठ ज्वालाप्रसादजी के सुपुत्र श्री माणकचन्द्र जी ने कराया था। दु ख है, कि आज माणकचन्द्र जी इस ससार मे नही है, किन्तु उनकी पुण्य स्मृति तब तक बनी रहेगी, जब तक इस काव्य का अस्तित्व रहेगा। यह कितने सौभाग्य की बात है और कितने सुन्दर सयोग की बात है, कि आगरा के सुप्रसिद्ध एजुकेशनल प्रेस से ही इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था और फिर आज उसी प्रेस मे इसका प्रकाशन हो रहा है।

मैं एजुकेशनल प्रेस के सचालक श्री जगदीशप्रसाद अग्रवाल को धन्यवाद देता हूँ, कि उन्होने 'धर्म-वीर सुदर्शन' काव्य का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर ढग से किया है। इसमे उन्होने जो हमे पुस्तक को सुन्दर बनाने मे सहयोग दिया है, उसे भुलाया नही जा सकता।

यद्यपि 'धर्म-वीर सुदर्शन' की माँग अनेक वर्षो से हो रही थी, जनता की बढती हुई माँग को देखकर इस काव्य की लोक-प्रियता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसकी लोक-प्रियता को देख कर इसके प्रकाशन का विचार मन मे अनेक बार उठा, किन्तु कवि श्री जी महाराज अनेक वर्षो मे आगरा से बाहर ही रहे। उनकी अनुपस्थिति मे हम इसका प्रकाशन करना उचित नही समझते थे। यही कारण है, इसके प्रकाशन मे विलम्ब पर विलम्ब होता रहा।

अबकी बार जयपुर वर्षा-वास की परिसमाप्ति के बाद जब श्रद्धेय कविजी महाराज आगरा पधारे, तब हमने उनके श्री चरणो मे निवेदन किया, कि 'धर्म-वीर सुदर्शन' की मॉग निरन्तर बढ़ रही है। अतः इसकी लोक-प्रियता को देखकर इसका नवीन सस्करण हम करना चाहते है। यदि आपको इसमे कोई आवश्यक परिवर्तन करना हो, तो कर दीजिए। कवि श्री महाराज का स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी, और दर्शनाभिलाषी जनता की निरन्तर भीड रहते हुए भी, कुछ समय निकाल कर इसमे कुछ सशोधन करने की कृपा की हे। उस सशोधित रूप को प्रकाशित करके आज हमे परम प्रसन्नता है।

सोनाराम जैन
मन्त्री सन्मति ज्ञान-पीठ



भूमिका



मनुष्य-जीवन का आधार उसका सदाचार है । जैसे चमक के बिना मोती किसी काम का नही होता है, वैसे ही सदाचार के बिना मनुष्य जीवन किसी काम का नही होता । मनुष्य अपने इस शरीर को सुरभित करने के लिए चन्दन एव तगर आदि का प्रयोग करता है, अपने गले मे सुरभित पुष्पो की माला पहनता है, किन्तु वह यह नही सोचता, कि जीवन सदाचार के विना सुरभित नही वनाया जा सकता । इन वाहरी सुगन्धो से सदाचार की सुगन्ध ही श्रेष्ठ है । सदाचार जीवन का एक विशिष्ट गुण है, जिसके अभाव मे एक पशु मे और एक मनुष्य मे किसी भी प्रकार का भेद नही रहता है । जीवन मे धन का अभाव सहन किया जा सकता है, पूजा और प्रतिष्ठा का अभाव भी सहन किया जा सकता है, तथा दरिद्रता के भार को भी उठाया जा सकता हे, किन्तु चरित्र-हीनता को तथा चरित्र-भ्रष्टता को किसी भी प्रकार सहन नही किया जा सकता । सच्चरित्रता मानव-जीवन का एक सर्वश्रेष्ठ गुण है, जिसके आधार पर मानव ने इस समग्र सृष्टि मे अन्य प्राणियो की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है ।

भारतीय तत्व-चिन्तक जव मानव-जीवन पर गम्भीरता के साथ विचार करते है, तव उनके विचार-मथन का सार यही निकलता है—"**धर्मेण हीना पशुभि समाना ।**" धर्म-हीन जीवन पशु-जीवन के वरावर है । धर्म-हीन मानव मे और पशु मे केवल आकृति का भेद रह जाता है । महर्षि व्यास ने एक दिन यह कहा था—"इस सृष्टि मे सर्वाधिक वुद्धिमान और सर्वाधिक योग्य प्राणी मनुष्य ही है ।" मनुष्य से वढकर श्रेष्ठ इस सृष्टि मे अन्य कोई प्राणी नही हो सकता । मन मे विचार उठता है, आखिर मनुष्य मे ऐसी क्या विशेषता है, जिसके आधार पर मनुष्य के जीवन को सर्वश्रेष्ठ एव सर्वज्येष्ठ

कहा गया है ? उक्त प्रश्न के समाधान मे कहा गया है कि—मानव-जीवन की इस सर्वश्रेष्ठता का आधार उसका अपना चरित्र, उसका अपना सदाचार और उसका अपना सयम ही है।

पाश्चात्य जगत के प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक जेम्स एलन ने कहा है—"There is no substitute for beauti of mind and strength of character" मन के सौन्दर्य और चरित्र-बल की समानता करने वाली कोई दूसरी वस्तु नही है। तात्पर्य यह है, कि जब तक मनुष्य मे चरित्र-शीलता उत्पन्न नही होगी, तब तक उसके जीवन मे सुन्दरता, सुषमा और सस्कृति का प्रवेश नही हो सकेगा। तन उजला हो और मन काला हो, तो इस प्रकार के जीवन से मनुष्य को किसी प्रकार का लाभ नही हो सकता। शरीर यदि गौर वर्ण नही है, परन्तु मन मे पवित्रता है, तब जीवन का कल्याण हो सकता है। मानव-सस्कृति का मुख्य सिद्धान्त यही है, कि मन की पवित्रता ही उसके जीवन-विकास का आधार है। महान योद्धा नेपोलियन ने एक वार कहा था—"Be a man of action and high character. मनुष्य को सदा कर्मशील रहना चाहिए और सदा चरित्रशील रहना चाहिए।" जो मनुष्य कर्मशील है और चरित्रशील है, वह संसार मे कही पर भी क्यों न चला जाए, उसका आदर और उसका सत्कार सर्वत्र किया जाता है। जिस मनुष्य के पास सदाचार की और चरित्रशीलता की पूँजी है, उस व्यक्ति के लिए विदेश भी अपना स्वदेश बन जाता है और उसके लिए परजन भी स्वजन बन जाता है।

भारतीय सस्कृति सदा से इस तथ्य को स्वीकार करती रही है, कि मनुष्य स्वय इन्द्र है और इसकी इन्द्रिया सदा इसकी दासी रही है। पर कब, जबकि मनुष्य अपनी इन्द्रियो का निग्रह कर सके और अपने मन का निरोध कर सके। इन्द्रियो के निग्रह को और मन के निरोध को ही दर्शन-शास्त्र मे योग कहा गया है। योग-साधना वही व्यक्ति कर सकता है, जो अपने जीवन को सयम मे रख सके और अपने जीवन को अपने नियन्त्रण मे रख सके। भारतीय सस्कृति इन्द्रियो का दास होने मे वीरता स्वीकार नही करती, अपनी इन्द्रियो का स्वामी बनने मे ही वह वीरता मानती है। एक महान विचारक ने कहा है—"Most powerful is he who has himself in his own power" कहने का अभिप्राय यह है, कि शक्ति-सम्पन्न वही है, जो अपने मन पर और इन्द्रियो पर अधिकार कर सके। यूनान के महान विचारक पाइथागोरस ने

अपने युग की मानव-जाति को सम्बोधित करते हुए कहा था—"No man is free who cannot command himself मैं उस व्यक्ति को स्वतन्त्र नही कह सकता, जो अपने आप पर सयम का नियत्रण न कर सके।" सयम-शीलता और सच्चरित्र-शीलता मानव-जीवन का एक ऐसा गुण है, जिसमे ससार के समग्र गुणो का समावेश हो जाता है। स्वर्ग के देव, धरती के राजा और नगर के नगर-पति किसी सत के चरणो मे जब नत मस्तक होते है, तब उसका आधार उस सत का सयमी जीवन ही होता है। भारतीय सस्कृति ने प्रारम्भ से ही सम्राट् की अपेक्षा एक सयम-शील सत का ही सत्कार, सम्मान और समादर किया है।

भारतीय सस्कृति के साहित्य मे आपको सर्वत्र एक ही स्वर झकृत मिलेगा—सदाचार और संयम। सदाचार और सयम ही सबसे बडा धर्म है। इस धर्म की व्याख्या और परिभाषा करने के अनेक साधनो मे किसी महापुरुष के जीवन-चरित्र का कथन करना भी एक साधन रहा है। सयम क्या है, सदाचार क्या है और धर्म क्या है? इस तथ्य को और इस सिद्धान्त को केवल किसी शास्त्र के पन्नो के आधार पर ही नही समझा जा सकता जब तक कि जन-चेतना के समक्ष उसका साकार रूप उपस्थित न कर दिया जाए। धर्म और सदाचार का साकार रूप क्या है? धर्मी और सदाचारी व्यक्ति का जीवन। जब हम किसी धर्मी और किसी सदाचारी व्यक्ति के जीवन को देख लेते है, अथवा सुन लेते है, तब हमे उस धर्म का और उस सदाचार का यथार्थ बोध हो जाता है। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बहुत से सुन्दर सिद्धान्तो की शिक्षा दी। पहले उसे ज्ञान-योग सिखाया, फिर उसे कर्म-योग सिखाया और अन्त मे उसे भक्ति-योग बतलाया। परन्तु ये सब कुछ सुन कर भी अर्जुन के मन का समाधान नही होने पाया और वह बोला—"भगवन्! मै कुछ नही समझ पाया हूँ। ज्ञानवाद, कर्मवाद और भक्तिवाद की यह गहन गम्भीर चर्चाएँ मेरे मन और मस्तिष्क मे नही पैठ सकी हैं। आपने अपने दार्शनिक प्रवचन मे जिस स्थित-प्रज्ञ पुरुष की व्याख्या की है और जिसके स्वरूप का आपने प्रतिपादन किया है, उसका साकार रूप ही आप मुझे बतलाइए। वह कैसी भाषा बोलता है? उसका आचरण कैसा होता है? और उसका व्यवहार कैसा होता है? अर्जुन के इस प्रकार पूछने पर भगवान श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा, उसका अन्तर्मर्म यह है कि—"तू मुझे ही देख और

समझ। मेरे जीवन को देखकर तू उस स्थित-प्रज्ञ का विचार कर, जिसका स्वरूप मैंने तुझे बतलाया है।"

भारतीय साहित्य का परिशीलन करने पर परिज्ञात होता है, कि आज से नही, बहुत प्राचीन काल से ही मानव को धर्म का रहस्य समझाने के लिए किसी न किसी चरित्र का, कथानक का और आख्यान का आधार लिया गया है। जैन-आगमो मे, बौद्ध पिटको मे और वैदिक परम्परा के उपनिषदो मे इस प्रकार के हमे अनेक निदर्शन मिल जाते हैं, जहाँ पर किसी व्यक्ति के जीवन की कहानी को कहकर फिर धर्म-रहस्य समझाने का प्रयत्न किया है। इसके सबसे अच्छे उदाहरण योग-वाशिष्ठ, रामायण, महाभारत और पुराण हैं। कम से कम समझ का व्यक्ति भी इनको पढकर और सुनकर आसानी से धर्म के रहस्य को समझ सकता है।

जैन-परम्परा के साहित्यकारो ने प्रारम्भ से ही इस ओर ध्यान दिया है। यही कारण है कि जैन-परम्परा का कथा-साहित्य अत्यन्त समृद्ध और विपुल मात्रा मे रचा गया है। जैन-कथाकारो ने अपने-अपने युग की भाषा और संस्कृति को भी अपने कथा-ग्रन्थो मे अपनाया है। यही कारण है, कि जैन-कथा-साहित्य भारत की विभिन्न भाषाओ मे आज भी उपलब्ध होता है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, और दक्षिण भारत की कन्नड, तेलगु एव मलयालम आदि अनेक भाषाओ मे जैन परम्परा का कथा-साहित्य बिखरा पडा है। जैन कथा-साहित्य के स्रष्टा साहित्यकारो ने अपने-अपने युग की भाषा का सदा आदर किया है। उन्होने अपने विचारो की अभिव्यक्ति का माध्यम सदा से जन-बोली को ही बनाया है। आज से दो-तीन शताब्दी पूर्व जैन-कथाएँ अपभ्रंश मे लिखी जाती थी अथवा उस हिन्दी मे लिखी जाती थी, जिसे कबीर की सधुक्कडी भाषा कहा जाता है। परन्तु जैसे जैसे हिन्दी भाषा का विकास होता गया, जैन परम्परा के साहित्यकारो ने उसे अपनाया और उसी मे अपनी कलम का चमत्कार दिखलाया। मेरे कहने का अभिप्राय इतना ही है, कि जैन विद्वानो को कभी किसी भाषा का व्यामोह नही रहा। वे जिस किसी भी प्रान्त मे चले गए, उन्होने उसी प्रान्त की भाषा को अपना लिया और उसी मे अपनी रचना करने लगे। भाषावाद और प्रान्तवाद को कभी भी जैन लेखको ने प्रोत्साहित नही किया। आज के युग के बडे-बडे जैन विद्वान हिन्दी मे ही अपनी रचना को प्रस्तुत करने मे अपना गौरव समझते है। क्योंकि वे हिन्दी

को अपनी राष्ट्र-भाषा समझते है। राष्ट्रभाषा का गौरव उनके मन मे सदा से रहा है।

प्रस्तुत मे, धर्म-वीर सुदर्शन के विषय मे मै आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। धर्म-वीर विशेषण इस भाव को अभिव्यक्त करता है, कि सुदर्शन धर्म की आराधना से ही वीर बना था। सहज जिज्ञासा उठती है, कि यह सुदर्शन कौन था ? किस देश का था, किस जाति का था और इसके जीवन की क्या विशेषता थी, कि किसी कवि को उसके जीवन को आधार बना कर अपने युग की जन-चेतना के समक्ष धर्म और सदाचार का महत्व बतलाने की प्रेरणा मिली ? एक बात मैं यहाँ स्पष्ट कर दूँ। धर्म-वीर सुदर्शन का चरित्र अनेक लेखको ने लिखा है और अनेक भाषाओ मे लिखा गया है। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश मे धर्म-वीर सुदर्शन का जीवन बहुत पहले ही लिखा जा चुका था, किन्तु आधुनिक हिन्दी मे और वह भी अलकृत हिन्दी मे काव्यमय रचना प्रथम वार ही कवि श्री जी के द्वारा प्रस्तुत की गई है। सुदर्शन कौन था और किस देश का था तथा किस जाति का था ? इन सब प्रश्नो का समाधान पाठक प्रस्तुत काव्य पुस्तक को पढ कर ही पा सकेंगे। अथ से इति तक कथा को दुहराने की यहाँ पर आवश्यकता नही है। परन्तु यहाँ पर इतना जानना तो अवश्य ही अभीष्ट है, जिस वासना और कामना का मनुष्य दास बना रहता है, उस कामना और वासना पर सुदर्शन ने, साधु बन कर नही, गृहस्थ मे रहते हुए भी प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। शास्त्रो मे ब्रह्मचर्य की महिमा और गरिमा की जो दीर्घ प्रशस्ति प्रस्तुत की गई है, उसका साकार रूप सेठ सुदर्शन था। सेठ सुदर्शन के जीवन के कण-कण मे जैन-संस्कृति परिव्याप्त थी। उसके अस्थि और मज्जागत सस्कार कुछ इस प्रकार के थे, कि उसका जीवन प्रारम्भ से ही धर्ममय और सदाचारमय रहा था। सुदर्शन के जीवन का पूर्ण चित्र पाठक तभी पा सकेगे अथवा देख सकेंगे जब कि वे उसके इस काव्यमय जीवन को प्रारम्भ से अन्त तक पढ जाएँगे। इस काव्य मे जो कुछ कहा गया है, वह काल्पनिक नही है, बल्कि मानव की इस धरती पर घटित सत्यमयी घटना है। पर आज नही, आज से सैकड़ो वर्षों पूर्व, बल्कि हजारो वर्ष पूर्व यह घटना भारत की इसी पवित्र धरती पर घटी थी, जिसका अकन आज के कवि ने, आज की भाषा मे और आज के मानव को सदाचार की महिमा बताने के लिए किया है।

चन्दन, सुमन आदि की जितनी,
सुरभि विश्व में है सुन्दर।
शील धर्म की अक्षय मोहक,
सुरभि श्रेष्ठ सब से बढ़ कर॥



पवन-प्रताड़ित एक ओर ही,
अन्य सुगन्ध महकती है।
शील-सुगन्ध किन्तु जगती के
कण-कण-मध्य गमकती है॥

—उपाध्याय अमर मुनि



धर्म-वीर सुदर्शन

सर्ग एक

उपक्रम

जगती ज्योति अखंड नित सदाचार की यत्र ,
यश, लक्ष्मी, सौभाग्य, सुख रहते निश्चल तत्र !

मानव-भव का सार यही है सदाचार का अपनाना ।
पूर्णरूप से शुद्ध श्रेष्ठ आदर्श जगत मे बन जाना ।।

वह मनुष्य क्या,सदाचार का तनिक न रस जिस को भाया ।
नर-चोले मे राक्षस-सा अधमाधम जीवन अपनाया ।।

सदाचार है पतित-पावनी गंगा की निर्मल धारा ।
पापाचार-दैत्य-दल-दलनी चक्र सुदर्शन की धारा ।।

पंडित ज्ञानी बन जाने का यही सार वतलाया है ।
'तोता रटन' अन्यथा निष्फल शास्त्र-पठन कहलाया है ।।

अखिल धर्म के नेताओ ने महिमा इसकी है गाई ।
और इसी के बल पर सवने सर्वोत्तम पदवी पाई ।।

आओ, मित्रो! चले जहाँ पर सदाचार की झलक मिले ।
सदाचार-वेदी पर वलि होने का उच्चादर्श मिले ।।

सज्जनता की दुर्जनता पर विजय अखण्ड बतानी है।
नर-जीवन भी देव-दैत्य-द्वन्द्वो की एक कहानी है।।

अंग देश मे अति सुखद, चंपा पुर अभिराम,
सभी भाँति समृद्धि से, शोभा अधिक ललाम।

भारत मे चपा का भी क्या ही इतिहास पुराना है।
लाख-लाख वर्षो का इसके पीछे ताना-बाना है।।
देवराज-पूजित तीर्थंकर वासुपूज्य त्रिभुवन-स्वामी।
चपा में निज कर्म-बन्ध को तोड हुए शिवगति-गामी।।
महावीर भगवान् स्वय चपा नगरी मे आए थे।
देव-जन्म के क्या-क्या कारण, गौतम को समझाए थे।।
सती सुभद्रा के सतीत्व की चपा मे महिमा छाई।
कच्चा सूत बाँध छलनी से नीर कूप से भर लाई।।
चन्दन बाला के चरित्र की अति ही अद्भुत शैली है।
जिसकी शील-सुरभि आज भी विश्वगगन में फैली है।।
चपा मे गुरु शिष्य सुधर्मा जम्बू के सवाद हुए।
नानाविध आगम चर्चा के प्रश्नोत्तर साह्लाद हुए।।
कामदेव से श्रावक-पुगव यही विश्व-विख्यात हुए।
सुर-कृत अग्नि-परीक्षा में जो स्वर्ण-सदृश अवदात हुए।।
सदाचार के अमित रत्नमणि चपा मे उद्भूत हुए।
एक-दूसरे से बढ़-चढकर चंपा के दिव्य सपूत हुए।।

चपा की मणि-माला मे इक रत्न और जुड जाता है।
वीर-'सुदर्शन' सेठ अलौकिक अपनी चमक दिखाता है।।

स्नेह-मूर्ति था द्वेष, क्लेश का लेशमात्र था नाम नही।
स्वप्न-लोक में भी झगडे-टटे का था कुछ काम नही॥
दीनो की सेवा करने में निश दिन तत्पर रहता था।
नर-सेवा में नारायण-सेवा का तत्व समझता था॥
भूला भटका दुखी दीन जब कभी द्वार पर आता था।
आश्वासन सत्कार-पूर्ण सस्नेह यथोचित पाता था॥
यौवन की आँधी में भी वह सदाचार का पक्का था।
निज पत्नी के सिवा शुद्ध मन ब्रह्मचर्य में सच्चा था॥
बाल्य-काल मे श्रावक-व्रत के नियम गुरू से धारे थे।
धारे क्या, अनुभव के बल निज अन्तर्मध्य उतारे थे॥
न्याय-मार्ग से द्रव्य कमा कर न्याय-मार्ग मे देता था।
सकुशल जीवन-नैय्या अपनी भव-सागर मे खेता था॥

भाग्य-योग से गृह-पत्नी भी थी 'मनोरमा' शीलवती।
प्राणनाथ पति की छाया की भाँति निरन्तर अनुवर्ती॥
दासी दास कुटुम्ब सभी नित रहते थे आज्ञाकारी।
बोला करती थी अति ही मृदु वाणी सब जन-प्रियकारी॥
देश, धर्म, जन-सेवा में नित पति का हाथ बँटाती थी।
क्लेश, द्वेष, मात्सर्य, रूढ़ि के निकट नही क्षण जाती थी॥
गृह-कार्यो में चतुर सुविदुषी देश काल का रखती ज्ञान।
पर पुरुषो को अन्तर्-मति में पिता वन्धु-सम देती मान॥



सर्ग दो

स्वदेश प्रेम

दम्पति प्रेमानन्द से, करते काल व्यतीत;
पूरी लय पर चल रहा, गृह-जीवन-सगीत ।
राज-पुरोहित श्री कपिल, बाल्यकाल के मित्र,
आए घर पर एक दिन, सरल स्नेह के चित्र ।

देख सुदर्शन श्रेष्ठि-वर्य ने झट उठ आदर मान दिया ।
अपने हाथों लगा प्रेम से वर ताम्बूल प्रदान किया ।।
अग-अग पुलकित था, उमडा हर्ष न हृदय समाता था ।
मित्र मेघ के आने पर मन मोर मुग्ध हो नाचा था ।।
भूमंडल मे 'मित्र' शब्द भी कैसा जादू रखता है ।
स्नेह-सूत्र मे दो हृदयो को अविकल बाँधे रखता है ।।
सच्चा मित्र वही जगती मे सर्व-श्रेष्ठ कहलाया है ।
मैत्री के प्रण को जिसने 'अथ' से 'इति' पूर्ण निभाया है ।।
दुग्ध और जल सी अभिन्नता जरा दुई का नाम नही ।
प्रेम-पथ में स्वार्थ हलाहल का तो कुछ भी काम नही ।।

पर्वत-सम अपने दुख को जो सर्षप-जैसा गिनता है।
किन्तु, मित्र-दुख-सर्षप भर की गिरि से समता करता है॥
जहाँ पसीना पड़े मित्र का, अपना रक्त बहा डाले।
झेले अनहद कष्ट स्वय, पर, सुखिया मित्र बना डाले॥
दब्बू या खुदगर्जी बन कर अपना धर्म न खोने दे।
और नही कर्तव्य-भ्रष्ट अपने मित्रो को होने दे॥
हत ! स्वर्ण-युग मित्रो का लद गया, घोर अधेर हुआ।
दोस्त नाम से दोषों का अब अटल राज्य चहुँ फेर हुआ॥

समय के चक्र ने कैसा भयकर फेर खाया है,
जगत में मित्रता के नाम पर अधेर छाया है !
जहाँ चाँदी भवानी की छनाछन हो तिजोरी मे,
वहाँ झट मित्र-दल ने आन दृढ आसन जमाया है !
कुपथ की ओर ले जाते, कराते सैर चकलो की
सिवा राडो व भाडो के न किस्सा अन्य भाया है !
पडी जब आफते भारी, फँसा हतभाग्य गर्दिश मे,
बनी के यार सब भागे, न ढूंढे खोज पाया है !
सुबह बाजार मे घूमे, परस्पर डाल गल वाहे,
दुपहरी में जो विगडी शाम को डडा दिखाया है !
जरा भी गुप्त कोई वात यदि निज मित्र की पाएँ,
करे वदनाम खुल्ला ढोल गलियो मे वजाया है !
भलाई ऐसे मित्रो से 'अमर' क्या खाक होवेगी,
वचन-मन मे कि जिनके रात्रि दिन-सा भेद पाया है !

क्षेम-कुशल इत्यादि की, वाते हुई अनेक,
तदनन्तर दोनो चले, भ्रमण-हेतु सविवेक।

मद-सुगन्ध-समीर-युत, घूमे पुष्पाराम,
वापिस आते कपिल का, आया गृह अभिराम।
कहा कपिल ने तब समुद, हुई भ्रमण में देर,
भोजन कर मेरे यहाँ, निजगृह जाना फेर।
सेठ सुदर्शन ने करी, मित्राज्ञा स्वीकार;
आनाकानी हो कहाँ, जहाँ कि प्रेमाचार।

भोजन से होकर निवृत्त निज राष्ट्र-चिन्तना करते है।
शान्त कान्त एकान्त भवन मे गुप्त-मत्रणा करते है॥
कहा सेठ ने—"कपिल! तुम्हें कुछ अपने पुर का भी है ध्यान।
अत्याचार-ग्रस्त पुर-वासी निर्बल जनता का कुछ भान॥
नैतिक वातावरण नगर का दूषित होता जाता है।
भ्रष्टाचारी युवक-वर्ग पतनोन्मुख होता जाता है॥
द्यूत, मद्य और वेश्याओ के आलय सब आबाद हुए ?
हत ! खेद है, धर्माचारी गृह-वासी बर्बाद हुए॥
दीन प्रजा के नौनिहाल शिक्षा दीक्षा कब पाते है ?
मूढ अशिक्षित रहने से फँस दुराचार मे जाते है॥
प्रजा-पतन का मूल हेतु राजा का व्यसनी होना है।
राज-धर्म से च्युत होकर विषयासव पीकर सोना है॥
न्याय-भवन मे न्याय कहाँ, अब दौर मद्य के चलते है।
द्यूत खेलने में निश दिन सोने के पासे ढलते है॥
न्यायालय मे एक भाव से गीले सूखे जलते है।
रिश्वत खा-खाकर अधिकारी न्याय-नाम पर पलते है॥

प्रजा-कष्ट-कर नित्य नए जालिम फर्मान निकलते है।
कर-भारो से दीन-हीन श्रमजीवी रो-रो घुलते है॥
बैठ वशिष्ठासन पर कब तुम अपना फर्ज बजाते हो ।
राज्य-शान्ति का व्यर्थ ढोग माला-जप में बतलाते हो॥
"त्राहि-त्राहि' कर प्रजा दुःख से जब विद्रोह मचाएगी।
शान्ति-पाठ की शान्ति तुम्हारी तब क्या ढाल अडाएगी॥
बुद्धि-भ्रष्ट नृप को समझाने का तो है अधिकार तुम्हे।
जी हुजूर होने पर मिलता प्रेत्य नरक का द्वार तुम्हे॥
तुम्हे भले ही लक्ष्य न हो, पर, मै तो अपनी कहता हूँ।
रात्रि-दिवस अन्दर-ही-अन्दर चिन्तानल में दहता हूँ॥
जब-जब मै इस पतन-चित्र को बुद्धि-क्षेत्र मे लाता हूँ।
दु:ख-सिन्धु मे बह जाता हू रोता रात बिताता हूँ॥"
बह चली सुदर्शन के नेत्रो से अविरल आँसू की धारा।
बोल न सके और कुछ आगे, रुँधी शेष वाणी-धारा॥

मर्माहत हो मित्र पुरोहितजी भी गद्गद-स्वर बोले।
राज-भवन के भेद गुप्त-तम साफ़-साफ सब कुछ खोले॥
"मित्र! तुम्हारा कथन सत्य है, किन्तु न मम वश चलता है।
एक-मात्र अभया रानी का शासन निर्मम चलता है॥
अधिकारी अपनी इच्छा से रखती और हटाती है।
आज सिहासन बैठाती है, कल फाँसी लटकाती है॥
अपने राजा दधिवाहन तो अन्तःपुर की तितली है।
रूपगर्विता अभया के हाथो की कठ-पुतली है॥

साकेतिक मधु भाषा मे तो बहुत बार है समझाया !
कटु औषधि के बिना पूर्ण फल किन्तु कहाँ किसने पाया ?
अधिकारी होने के नाते नही अधिक कुछ कह सकता।
'धक्के खाऊँ, फाँसी पाऊँ' यह आतक न सह सकता ॥
आप नगर के उप-राजा है, राजा को जाकर समझाएँ।
सभव है, यदि आप कहेगे तो कुछ पथ पर आजाएँ ॥
जैसा भी कुछ हूँ कि तुम्हारे स्वर मे मै भी बोलूँगा।
कड़वी मीठी कह सुन कर राजा के श्रुतिपट खोलूँगा ॥"

युगल मित्र मिलकर चले, राजा के दरबार,
राजा ने भी प्रेम से, किया उचित सत्कार।
हाथ जोड़ कर सेठ ने, रक्खा निज प्रस्ताव;
खोल खोल कर स्पष्टत, समझाया सब भाव।

"देव! आजकल पता नही कुछ, किस विचार मे बहते हो ?
राज्य-कार्य सव छोड अलग-सी किस् दुनियाँ मे रहते हो ?
अन्यायी अधिकारी-गण ने प्रजा ः त कर रक्खी है।
तात! तुम्हारी सन्तति की मिट्टी पलीद कर रक्खी है ॥
दीन प्रजा-जन कैसे-कैसे जोर जुल्म नित सहते है।
चम्पापुर मे हास्य कहाँ, आँसू के निर्झर वहते है ॥
वैभव की सुख-निद्रा तज कुछ प्रजा-श्रेय भी करिएगा।
क्षणभगुर दुनियाँ मे स्वामी! अमर सुयश कुछ गहिएगा ॥
धनाभाव से यदि शिक्षादिक-प्रजाहित न वन सकता है ?
तो अपना भडार दास श्रीचरणो मे धर सकता है ॥

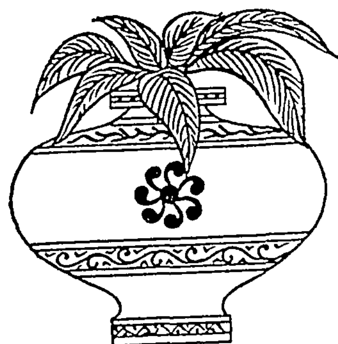
कौडी-कौड़ी पैसा-पैसा प्रजाहितार्थ लुटा दूँगा ।
स्वामी जहाँ खडा कर देगे वहाँ से पद न हटाऊँगा ।।"

राजा वही जो राष्ट्र की सेवा बजाता है,
'स्वामी अह' का भाव सपने मे न लाता है ।
अणु मात्र भी पाता व्यथा अपनी प्रजा मे गर,
पडती ज़रा न कल, सदा आँसू बहाता है ।
मस्तक मे राष्ट्रोत्थान की ही कल्पना घूमे,
अपने निजी सुख-भोग पर ठोकर लगाता है ।
परमात्मा या देवता समझे प्रजा को ही,
और तो क्या, रक्षणा-हित प्राण की बलि भी चढाता है ।
सम्बन्ध राजा और प्रजा का है पिता सुत-सा,
जग मे 'अमर' है वह जो आजीवन निभाता है ।

उक्त कथन का पडित ने भी किया समर्थन समझा कर ।
दर्शाये सब भाव हृदय के बड़ी नम्रता दिखला कर ।।
राजा ने भी राष्ट्र-हितो की रक्षा का सम्मान किया ।
दब्बू या सकोचीपन से नही क्रोध अभिमान किया ।।
ऊपर मृदुता, किन्तु चित्त के अन्दर कटुता भारी है ।
सेठ सुदर्शन के प्रति अति ही घृणा भावना धारी है ।।
सोचा—"वणिक, सुगुरु बन मुझ को शिक्षा देने आया है ।
स्यार सिह के कान उमेठे, कैसा कलियुग छाया है ।।
मै अवश्य इस गुस्ताखी का इक दिन मजा चखाऊँगा ।
अवसर मिलने पर पाजी को कारागृह दिखलाऊँगा ।।"

कर प्रणाम राजा को दोनो मित्र सहर्षित चले तुरत ।
राजनीति में उलट-फेर की बाते नाना भॉति करत ।।

राजा भी महलों में पहुँचा क्रूर, कुटिल अति ही क्रोधान्ध ।
दैव-दोष से बन जाते है, चतुर विचक्षण भी प्रज्ञान्ध ।



सर्ग तीन

अन्धकार के पार

आओ, अब घर कपिल के, चले वहाँ क्या हाल,
बैठी कपिला ब्राह्मणी, शोकाकुल बेहाल।
भोजन-गृह में सेठ का, देखा रूप रसाल;
कामानल की हृदय में, ज्वाला उठी कराल।

देखा जब से सेठ सुदर्शन कपिला सुध-बुध भूल गई।
भोग-वासना के विषधर-से भूले पर ही भूल गई॥
लोक-लाज कुल-मर्यादा का कुछ भी नही खयाल रहा।
रात दिवस अन्दर-ही-अन्दर शल्य विरह का साल रहा॥
हर समय सेठ से मिलने की हो चिन्ता मे वह रहती है।
अन्तरग दासी से अपना भेद साफ सब कहती है॥
"देखा, चंपा! तूने जग मे सुन्दर ऐसे होते है।
दर्शन-भर से ही मन मे जो बीज प्रेम का बोते है॥
रूप-माधुरीयुत पुरुषो में वे ही एक नगीने है।
पडितजी तो उनके आगे लगते साफ कमीने है॥

कर प्रणाम राजा को दोनो मित्र सहर्षित चले तुरत ।
राजनीति मे उलट-फेर की बाते नाना भाँति करत ।।

राजा भी महलों मे पहुँचा क्रूर, कुटिल अति ही क्रोधान्ध ।
दैव-दोष से बन जाते है, चतुर विचक्षण भी प्रज्ञान्ध ।



सर्ग तीन

अन्धकार के पार

आओ, अब घर कपिल के, चले वहाँ क्या हाल,
बैठी कपिला ब्राह्मणी, शोकाकुल बेहाल।
भोजन-गृह मे सेठ का, देखा रूप रसाल;
कामानल की हृदय में, ज्वाला उठी कराल।

देखा जब से सेठ सुदर्शन कपिला सुध-बुध भूल गई।
भोग-वासना के विषधर-से झूले पर ही झूल गई॥
लोक-लाज कुल-मर्यादा का कुछ भी नही खयाल रहा।
रात दिवस अन्दर-ही-अन्दर शल्य विरह का साल रहा॥
हर समय सेठ से मिलने की हो चिन्ता मे वह रहती है।
अन्तरग दासी से अपना भेद साफ सब कहती है॥
"देखा, चपा! तूने जग मे सुन्दर ऐसे होते है,
दर्शन-भर से ही मन मे जो बीज प्रेम का बोते है॥
रूप-माधुरीयुत पुरुषो मे वे ही एक नगीने है।
पडितजी तो उनके आगे लगते साफ कमीने है॥

जीवन धन्य तभी यह होगा, जब तू उन्हे मिला देगी।
देख, अन्यथा मुझे मौत के घाट उतरते देखेगी ॥"
ऊँच नीच बहुत ही बाते दासी ने सब समझाई।
काम-विह्वला कपिला के पर एक न मस्तक मे आई ॥

अस्तु, एक दिन कपिल पुरोहित ग्रामान्तर के कार्य गए
अनायास ही कपिला के भी मनचीते सब कार्य भए ॥
दासी दौडी गई सेठ-घर अविरल अश्रु बहाती है।
बोली अलग सुदर्शन से यो अन्तर कपट छुपाती है ॥
" सेठ ! तुम्हारे मित्र कपिल हा बहुत सख्त बीमार पड़े।
जीवन की अन्तिम घडियाँ है, शैय्या पर लाचार पडे ॥
बड़ी वेदना है, मछली के तुल्य तड़फते रहते है।
जब भी आता होश क्षणिक, तब 'मित्र सुदर्शन' कहते है ॥"

मित्र-वेदना सुनते-सुनते आँख सेठ की भर आई।
सोचा—"प्रभो! अचानक यह क्या सकट की घटना आई ॥
प्रजाकार्य प्रारंभ अभी तक नही सफल समतोल हुआ।
मध्य-धार मे सहयोगी का जीवन डॉवा-डोल हुआ ॥
धोखा देकर मुझे अचानक मित्र ! छोड क्या जाएगा ?
तुझ-सा स्नेही अन्य कहाँ से मेरा मानस पाएगा ?"

गए सुदर्शन दौड़ कर कपिल-गेह तत्काल;
उन्हे पता क्या था, वहाँ बिछा हुआ है जाल।
मित्र ! मित्र !! कहते घुसे, ज्यो ही शयनागार,
त्यो ही दासी ने जड़ा, ताला झट से द्वार।

कामयंत्रणा-विकल कामिनी [illegible]
पूर्णतया सब ओर दबाकर लंबी [illegible]
दबे साँस से पुरुष-स्वर में गहरी आहें [illegible]
ज्वर-रोगी सी दशा बनाए सिसक-सिसक कर [illegible]
"कहो, मित्र! क्या हाल." [illegible] यों पास बैठ बतलाता है।
नाड़ी-दर्शन-हेतु हाथ [illegible] में शीघ्र बढ़ाता है॥
कंकण-भूषित कर छूते ही [illegible] आया है।
मित्र वित्र कुछ नहीं, [illegible] है॥
पीछे से मुड़कर [illegible] है।
कपिला ने [illegible] है।
लाज-शर्म सब [illegible] किया।
हाव-भाव के [illegible] किया॥
"प्राणनाथ! [illegible] है?
दर्शन [illegible] है।
समझाया दिल को [illegible] है।
ज्यों-ज्यों [illegible] विरह-वेदना त्यों-त्यों [illegible] है॥
सेवा में दासी का सब कुछ तन [illegible]
निःसंकोच-भाव से खुलकर [illegible]"

देख सेठ ने विकट परिस्थिति किया [illegible]
"काम-विह्वला-नारी को किस भाँति [illegible]
चाहे कैसा ही समझाऊँ, नहीं [illegible]
ज्यादह अगर रहा यहाँ पर तो [illegible]

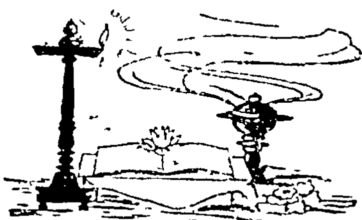
शीघ्र-सोच कर बोले—"भद्रे ! मै क्या अपनी बतलाऊँ ?
लज्जा अडी खडी है सम्मुख गुप्त भेद क्या समझाऊँ ॥
परमेश्वर ने मेरे प्रति तो बडा विकट अन्याय किया ।
सुन्दरता दी, किन्तु खेद है—नही मुझे पुरुषत्व दिया ॥
मैने मात्र देखने भर को ऊपर नर-तन धारा है ।
अन्दर से नामर्द जन्म का दैव बडा हत्यारा है ॥
लज्जा-कारण अब तक मैने निज क्लीबत्व छिपाया है ।
भद्रे ! तुम न किसी से कहना आज भेद खुल पाया है ।"

इतना सुनते ही कपिला तो बदहवास हो शरमाई ।
अपनी भोग-मूढता पर अन्दर-ही-अन्दर पछताई ॥
"नही बना कुछ कार्य, व्यर्थ ही परदाफाश हुआ मेरा ॥
हाय ! वासना तूने मुझको अन्धकूप मे ला गेरा ॥
पीतल कोरा निकला जिसको मैने कचन समझा था ।
गध-हीन किशुक को पाटल पुष्प विमोहन समझा था ॥"

"चपा ! खडी देखती क्या है ? खोल झपट कर दरवाजा ।
बाहर काढ पाप को, निकला कोरा हिजडो का राजा ।"
"भद्रे ! क्यो घबराती तुम हो ? मै तो खुद ही जाता हूँ ।
वृथा कष्ट यह हुआ आपको इसकी माफी चाहता हूँ ॥"

कपिला दिल मे घबराई फिर हाथ जोडकर यो बोली ।
"कृपा करे, न किसी से कहना बात जोकि मैने खोली ॥"
कहा सेठ ने "मेरी भी यह गुप्त बात नही कहना ।
दोनो की बातो का अच्छा दोनो तक सीमित रहना ॥"

सेठ और कपिला दोनों ने वचन-बद्धता की स्वीकार।
दासी ने भी खोला झट-पट दरवाजा आज्ञा-अनुसार॥
द्वार खुला तो सेठ सुदर्शन शीघ्र निकल बाहर आए।
सहा घोर अपमान, किन्तु निज-धर्म बचाकर हर्षाए॥
घर आते ही किया महाप्रण, निज मन मे धर भव्य विराग।
'महिलाऽऽमत्रण से पर-घर पर एकाकी जाने का त्याग॥'
शान्तिपूर्ण गृह-स्वर्ग लोक मे ठने न कटुता का व्यवहार।
कहा सेठ ने नही मित्र से कपिला का कुछ भी कुविचार॥
सागर-सम गभीर सज्जनो का होता है अन्तस्तल।
पी जाते है विष भी मधु-सम, चित्त नही करते चचल॥



सर्ग चार

संकट का बीजारोपण

प्रकृति-क्षेत्र मे अवतरित हुआ सुरम्य वसंत,
किन्तु सुदर्शन के लिए लाया उग्र उदत ।।

रग-मच पर प्रकृति नटी के परिवर्तन नित होते है ।
अच्छे और बुरे नानाविध दृश्य दृष्टिगत होते है ।।
पतन और उत्थान यथाक्रम आते जाते रहते है ।
क्षण-भगुर ससृति का रेखा-चित्र खीचते रहते है ।।
जीवन में सुख-दुःखादिक का चक्र निरन्तर फिरता है ।
मानव-पद के गुण-गौरव का सफल परीक्षण करता है ।।
संकट की घन-घटा सेठ पर भी अब छाने वाली है ।
धैर्य, धर्म की अग्नि-परीक्षा उत्कट होने वालो है ।।
स्वीकृत प्रण की मर्यादा को सेठ अखण्ड बचाएगा ।
अखिल जगत में सत्य सुयश का दुन्दुभि-नाद बजाएगा ।।

शीतानन्तर ठाठ-बाट से ऋतु वसन्त फिर आया है ।
मन्द सुगन्धित मलय पवन भी मादकता भर लाया है ।।

वन-उपवन के सभी द्रुमों पर गहरी हरियाली छाई।
रम्य हरित परिधान पहन कर प्रकृति सुन्दरी मुसकाई ॥
रग-बिरगे पुष्पों से तरु लता सभी आच्छादित हैं।
भ्रमर-निकर झंकार रहे वन उपवन सभी सुगन्धित हैं ॥
कोकिल-कुल स्वच्छन्द रूप से आम्र-मजरी खाते है।
जन-मन-मोहक मादक पचम राग मधुर-स्वर गाते है ॥
अखिल सृष्टि के कण-कण में नव यौवन का रग छाया है।
और साथ ही जन-हितकारी भव्य प्रेरणा लाया है ॥

शिक्षा दे रहा है, जग को, ऋतु वसन्त हितकारी !
वृक्षो ने पतझड़ में पहले त्यागी सुषमा सारी;
नयनाकर्षक शोभा के फिर बने शीघ्र अधिकारी।
फूलो-जैसा जीवन रचिए, बनिए पर-उपकारी,
निर्दय हाथ तोडते फिर भी उन्हे सुरभि दे भारी।
आम्र-मजरी खाकर कोयल बोले वाणी प्यारी.
सन्तों के वचनामृत पीकर बनो सरस गुण-धारी।
सद्गुणशाली सज्जन जो भी मिल जाएँ अविकारी,
सुरभित सुमनों पर मधुकर-सम रखो भाव प्रिय-कारी।
पुष्पफलान्वित तरु-शाखाएँ झुकती नम्र विचारी,
'अमर' वडप्पन पाकर सीखो झुकना सब नर-नारी।

भारत मे प्राचीन काल से प्रथा चली यह आती है।
आये वर्ष वसन्तोत्सव में वन-क्रीड़ा की जाती हैं ॥
चंपा-वासी नर-नारी भी समुद वसन्त मनाते हैं।
पुष्पारामो में नानाविध उत्सव रुचिर रचाते हैं ॥

सघन कुज में कोकिल-कठी बाला मधु बरसाती है।
मजुल गायन गाती है, वीणादि सुवाद्य बजाती है ॥
बडे प्रेम से प्रीति-भोज सब मित्र परस्पर करते है।
वन उपवन मे यत्र-तत्र सानन्द घूमते फिरते है ॥

सेठ सुदर्शन की पत्नी भी चली वसत मनाने को।
स्वर्गाङ्गण-सी वन-स्थली में यात्रानन्द उठाने को ॥
वस्त्राभूषण से सज्जित हो स्वर्णयान में बैठी यो।
मधुऋतु-दर्शन-हेतु अप्सरा स्वर्ग-लोक से उतरी ज्यों ॥
आस-पास में सखी-वृन्द सगीत वसंती गाता था।
मातृ-गोद मे पुत्र-युगल भी शोभा अभिनव पाता था ॥

आया रथ चलता हुआ, राज-महल के पास,
रानी अभया गोख में, बैठी थी सविलास।
आस-पास मे था जुड़ा, सखियो का परिवार,
बैठी थी कपिला वही, कपिल-पुरोहित नार।
देखी सती मनोरमा, देखे सुत सुकुमार,
रानी अति विस्मित हुई, चौंकी चित्त मँझार।

"देवी है, सच-मुच ही यह तो रूप गवाही देता है।
आँखो मे सौन्दर्य-सुधा से ठडक-सी भर देना है ॥
देखा ऐसा रूप आज तक नही किसी भी नारी का।
स्वर्ण-मूर्ति-सी राज रही, कुछ पार नही छवि प्यारी का ॥
चन्द्र-बिम्ब-सम मुख-मडल पर दिव्य मधुरिमा टपक रही।
अग-अग पर ललित लुनाई, मुघडाई है झलक रही ॥

अहा, इधर भी अजब-गजब की मनमोहक छवि छाई है।
बाल-युगल मे अखिल विश्व की रूप-राशि भर आई है॥
कैसी सुन्दर अभिनव जोडी सूर्य-चन्द्र-सी लगती है!
जग-प्रसिद्ध नल-कूबर की जोड़ी-सी असली लगती है॥
तप्त स्वर्ण-सा कान्तिमान तनु पूर्णतया है गठा हुआ।
मन्दहास्य-युत आनन है अरविन्द कमल-सा खिला हुआ॥
बाल्य काल की प्रकृति-चपलता रँग मे रँग बरसाती है।
रूप-राशि मे अपनी कुछ अभिनव ही छटा दिखाती है॥
जब कि पुत्र ही ऐसे है तो पिता न जाने क्या होगा?
वह तो सचमुच कामदेव ही मानव-तनु-धारी होगा॥
रंभा! अगर जानती है, तो बता कौन यह नारी है?
और फूल से इन पुत्रों का कौन पिता सुखकारी है॥"

दासी रभा बड़े गर्व से बोली "क्यों न जानती हूँ?
चम्पा-वासी सेठो को मै भली-भाँति पहचानती हूँ॥
विज्ञ सुदर्शन सेठ हमारा नगर-सेठ कहलाता है।
चम्पापुर का जो कि दूसरा राजा माना जाता है॥
वैभव का कुछ पार नही, दिन रात वित्त का नद वहता।
दीनबन्धु है, पर-उपकारी, पर-दुख में ही दुख सहता॥
कहूँ रूप के वर्णन में क्या, सुन्दरता का पुतला है।
मेरी आँखों से तो अव तक रूप न ऐसा निकला है॥
जैन धर्म का पालन करने वाला दृढ़ विश्वासी है।
त्यागी है, वैरागी है, घर वैठा भी सन्यासी है॥

रानी जी, यह सती मनोरमा उस ही की सेठानी है।
पुत्र-रत्न की जुगल जोड़ी भी उस ही की लासानी है ॥"

सुनते ही इतना कपिला तो चौक एकदम उछल पडी।
'झूठ ! झूठ !' कहकर दासी पर बड़े जोर से उबल पड़ी॥
"रंभा ! क्यों तू बिना बात की झूठी गप्प लडाती है।
लाज न आती है तुझको जो माया-जाल बिछाती है॥
और जगह क्या खाक टलेगी, रानी को बहकाती है।
सेठ सुदर्शन के जो दो-दो पुत्र-रत्न बतलाती है॥
सेठ बिचारा जन्मकाल से है हिजडा अति दुखियारा।
कैसे हो सकता हिजडे-घर पुत्र-रत्न का उजियारा॥"

रभा बोली "मिसराइन ! फिरती हो किसकी बहकाई।
झूठा दोष लगाते तुमको तनिक नही लज्जा आई॥
पूर्ण सत्य है, अटल सत्य है, जो कुछ भी मै कहती हूँ।
चम्पा का बच्चा-बच्चा जो कहता है, वह कहती हूँ॥
महलों मे बन्दी-जीवन-सम अपना जन्म गँवाती हो।
कौन मर्द है, कौन हीजडा ? भेद कहाँ से पाती हो ?"

बोली कपिला बडे गर्व से "मै भी सच्ची कहती हूँ।
सेठ सुदर्शन हिजडा ही है, कहती हूँ फिर कहती हूँ॥
गुप्त बात है यह अवश्य, पर मुझसे क्या यह छानी है।
महलों के अन्दर भी मैने स्वय सत्यता जानी है॥
बडा दुष्ट है, धन के वल पर इस नारी से व्याह किया।
हा ! मनोरमा-सी देवी को मझधारा मे डुवो दिया॥

क्या करती, बेचारी आखिर जारज ये अग-जात हुए।
अंदर की है कौन जानता, सेठ-पुत्र विख्यात हुए॥"

कहना था इतना कपिला का, रंभा का मुख लाल हुआ।
नही क्रोध का पार रहा, तन-मन में इक भौचाल हुआ॥
"लाज शर्म कुछ तो रखिएगा, नही बेहया बनिएगा।
सत्यवती सेठानी जी पर व्यर्थ कलक न धरिएगा॥
शील धर्म भी दुनियाँ मे है, कुछ तो श्रद्धा रखिएगा।
अपने-जैसी ही सब जग की, महिलाएँ न समझिएगा॥"

बातो-बातो मे बढ़ी, दोनों मे तकरार,
व्यर्थ क्लेश के कार्य मे, फँसता यो संसार।
अभया रानी ले गई, कपिला को एकान्त,
स्पष्टतया पूछा सभी, बीता सब वृत्तान्त।

कैसी बाते है सारी बतादे सखी!
जैसी बीती हो वैसी सुनादे सखी!
प्रेम से जब दो हृदय मिलते वहाँ क्या भेद है,
भेद होता है जहाँ, बस प्रेम का उच्छेद है,
पर्दा दिल से दुई का हटादे सखी!
हीजडा क्यो कर भला तू सेठ को है जानती,
जबकि दुनिया पुत्र वाला स्पष्ट उस को मानती,
असली अन्दर का भेद बतादे सखी!
रभा और तेरे कथन मे रात-दिन का फर्क है,
जान लूँ सच झूठ क्या है, बस यही मम नर्क है
भारी उलझन है, तू सुलझा दे सखी!

कैसे अन्दर का भेद बताऊँ सखी !
लज्जा आती है कैसे सुनाऊँ सखी !

क्या कहूँ, क्या ना कहूँ, दिल मे बडा सकोच है,
व्यर्थ के झगडे मे पड जाने का अति ही सोच है,
कैसे लज्जा का पर्दा हटाऊँ सखी !

प्रेम कहता है, हृदय के भाव सारे खोल दूँ,
बुद्धि कहती, जुल्म हो जाएगा गर सच बोल दूँ,
कैसे अपयश का दाग लगाऊँ सखी !

खास घटना मेरे जीवन मे बनी है, क्या कहूँ,
क्या करेगी पूछ कर, बस आज तो माफी चहूँ,
मै ना चाहूँ कि बात बढाऊँ सखी !

रानी बोली प्रेमाग्रह से "कपिला ! क्यो घबराती है ?
आगे कदम बढा कर अब फिर पीछे क्यो खिसकाती है ?
बातों ही बातो मे आधा गुप्त तत्व तो व्यक्त हुआ।
क्यो न साफ कहती निज मुख से शेष घटित जो वृत्त हुआ ॥
लेश मात्र भी अब तक मैने तुझ से भेद न रक्खा है।
दो देहो मे एक प्राण का स्वर झंकृत कर रक्खा है ॥
जो तू बात कहेगी मुझ से कभी न बाहर जाएगी।
कानो से सुन कर के अभया नही जीभ पर लाएगी ॥
जो स्नेही की गुप्त बात को गुड्डा बाँध उडाते है।
वे जाहिल मक्कार नरक में लाखो धक्के खाते है ॥"
रानी के प्रण से कपिला के मन मे साहस भर आया।
अन्तर में चिर रुद्ध पाप का स्रोत उमड़ मुख पर आया ॥

साफ साफ अथ से इति यावत पाप कहानी कह डाली ।
पापिन ने इक और पाप की नीव महा भीषण डाली ॥

कथा-पूर्ति मे कपिला ने जब हिजड़ेपन का न्यास किया ।
रानी ने तब्र करतल-ध्वनि के साथ विकट उपहास किया ॥
"भूल गई सारी चतुराई, कपिला ! तू तो भूल गई ।
वैश्य-पुत्र के सम्मुख ब्राह्मण-जाति हेकड़ी भूल गई ॥
सेठ साफ बच गया चाल से धूल झोक दी ऑखो में ।
ज्ञात हुआ वह बनिया भी है चतुर एक ही लाखो मे ॥
दासी का कहना सच्चा है, न है वस्तुत: वह हिजड़ा ।
शील धर्म की रक्षा के हित मार्ग झूॅठ का था पकडा ॥
महाशक्ति का जग मे नारी दृढ़ अवतार कहाती है ।
अखिल सृष्टि के पुरुषो को मन-चाहा नाच नचाती है ॥
आती है जब अपने पर तो ऐसा जाल बिछाती है ।
मानव तो क्या, देवो तक की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ॥
बणिक-पुत्र भी नही फॅसाया गया जाल मे हा तुझ से ?
विश्व-मोहिनी ललनाओं का डूबा गौरव हा तुझ से ॥
नही बन सका कार्य, व्यर्थ ही तूने लाज गॅवाई है ।
वणिक-चक्र में उलझ गई, बदनामी बुरी कमाई है ॥
माल मुफ्त का मरे गलो का बडी मौज से खाती है ।
दान पुण्य के भोजन से जीवन निस्तेज बनाती है ॥"

स्वाभिमान कपिला का इतना सुन कर सहसा चटक उठा ।
बोली अभया से तन मन मे रोष हुताशन भड़क उठा ॥

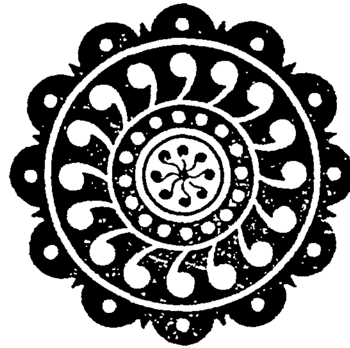
"रानी जी ! निज चतुराई पर अभी न इतना इतराएँ।
ताने मार मार कर मत यो दीन ब्राह्मणी कलपाएँ॥
मै विमूढ हूँ, मेरे वश में नही पुरुष हो सकते है।
किन्तु आपके चरणो मे तो सुर भी नत हो सकते है॥
अगर शक्ति है, मुझको भी कुछ चमत्कार दिखला दीजे।
सेठ सुदर्शन को वश मे कर, मेरा भी बदला लीजे॥
क्षत्राणी उस दिन ही मै भी तुमको असली समझूँगी।
हृदयहीन को जब कि तुम्हारा प्रेम-भिखारी देखूँगी॥
नारी - जग की लाज कृपा करके अब तुम ही रखिएगा।
अभिमानी धर्मान्ध सेठ को शीघ्र पराजित करिएगा॥"

रानी अभया ने सुने कपिला के उद्गार,
रोम रोम में गर्व की गूँज उठी झनकार।
संकट के काले कुदिन आते है जिस बार,
छा जाता है बुद्धि पर घोर घुप्प अँधकार।
मन्द हास्य हँस प्रेम से बोली साहंकार,
कपिला को देने लगी मीठी सी फटकार।

"क्या कहूँ मै कपिला ! तुझको, भ्रम मे भूली फिरती है।
रानी अभया को अपने मन में तू कुछ न समझती है॥
अखिल राष्ट्र मे पूर्णतया मेरा ही शासन चलता है।
टल सकता है हुक्म भूप का, पर मेरा कब टलता है॥
चमत्कार देखेगी ? अच्छा, तुझे अभी दिखला दूँगी।
सेठ सुदर्शन को निज पद-कमलो का भ्रमर बना दूँगी॥

जादू डाल रूप का निज-मन-चाहा नाच नचाऊँगी।
मक्कारी सब भुला काठ का उल्लू उसे बनाऊँगी॥
अगर आज का प्रण मै अपना पूर्ण नही कर पाऊँगी।
सौ बातों की बात, तुझे फिर अपना मुख न दिखाऊँगी॥"

तदनन्तर झट नमस्कार कर कपिला ने प्रस्थान किया।
रानी ने भी इधर शीघ्र ही रभा का आह्वान किया॥



सर्ग पाँच

अभया का कुचक्र

अभया अपने-आप ही, करती है क्या काम,
होती है मति अति विकल, होता जब विधि वाम ।

"रभा ! तेरी चतुराई की आज परीक्षा होनी है ।
अन्तर्मन की विरह वेदना, सखी ! तुझे ही खोनी है ।।

सेठ सुदर्शन की रूपच्छवि मोहक हृदय समाई है ।
कैसे मिलू, करू क्या, तन की, मन की सुध बिसराई है ।।

एक बार सेठ को कैसे भी हो यहाँ लाना होगा ।
चाहे कुछ हो, पार मनोरथ-सागर के जाना होगा ।।

कोई चाल चला ऐसी, जो कार्य शीघ्र ही बन जाए ।
और साथ ही इस छल-बल का भेद नही खुलने पाए ।।"

रानी की यह सुनी जहर से भरी बात तो चौंक पडी ।
भूल गई सुध-बुध सब, सहसा बिजली जैसे शीश पड़ी ।।

हाथ जोड़ कर विनय भाव से बोली रभा दृढता धार ।
स्पष्ट रूप से कहे, स्वयं के मन के जो थे शुद्ध विचार ।।

राज-रानी ! क्या समाई आज दिन ?
बात गदी क्या सुनाई आज दिन ?

आप तो विदुषी बड़ी धीमान हो,
सोचिए, ऐसा कि जग-सम्मान हो,
लोक-लज्जा क्यो हटाई आज दिन !

शील मे आदर्श है हम को तुम्ही,
मूर्ति है प्रत्यक्ष पतिव्रत की तुम्ही,
क्यो सहज शुचिता गँवाई आज दिन !

सेठजी है धर्म पर अपने अटल,
मन्दराचल-तुल्य है मन से अचल,
शील की धूनी रमाई आज दिन !

लाख कीजे यत्न डिगने का नही,
प्राण देगा, धर्म तजने का नही,
व्यर्थ क्यो करती हँसाई आज दिन !

भूप सुन पाएँ, करे मिट्टी खराब,
प्राण शूली पर चढे, क्या है बचाव,
बातें बेढगी उठाई आज दिन !

काम यह मुझसे कभी होगा नही,
साफ कहती हूँ, जरा धोखा नही,
जुल्म से चाहूँ रिहाई आज दिन !

मानवी चोला मिला सत्कर्म से,
भ्रष्ट क्यो करनी भला दुष्कर्म से;
लीजिए, जग मे भलाई आज दिन !

अरी तू देती मुझे क्या ज्ञान ?
रभा ! तेरी कैंची से भी, चलती अधिक जबान !
मालिक से किस भाँति बोलना, तुझे नही कुछ भान,
झूठा ज्ञान छोकने में ही, रहती नित गल्तान !
धर्म-धर्म की मचा दुहाई, व्यर्थ फोडती कान,
मुझको बिल्कुल पतित समझती, बनती खुद गुणवान !
मेरा कार्य नही प्रिय तुझको, प्यारे है निज प्रान,
व्यर्थ धर्म की आड़ लगा कर, करती मम अपमान !
धर्म-कर्म कुछ नही, ढोंग है, मात्र अतथ्य बितान,
जो कुछ भी है सभी यही है, आगे है सुनसान !
चुपके से यह कार्य बनादे, कहना मेरा मान,
देख, अन्यथा मै अभया हूँ, भूलेगी सब गान !
नही जानती कहने भर से, क्या होगा तूफान,
खाल खिचा भुस भरवा दूँगी, रोएगी नादान।
सेठ-वेठ क्या चीज बिचारा, भूले झट औसान,
नारी मोहन मन्त्र अजब है, मोहित हों भगवान !
मत भय कर तू किसी बात का, निर्भय कारज ठान,
राजा मेरी मुट्ठी मे है, नही उसे कुछ ध्यान !

रभा ने अभया रानी का कोप-पूर्ण वक्तव्य सुना।
घूट जहर की कड़वी पीकर मौन शान्ति का मार्ग चुना ॥
समझा मन में "अगर इसे कुछ और अधिक समझाऊँगी।
नही पता, क्या कुछ हो जाए, व्यर्थ सताई जाऊँगी ॥
बुद्धि भ्रष्ट होगई सर्वथा काम-ज्वर का जोर हुआ।
भाग्य-सूर्य छिप गया हन्त ! दुर्भाग्य तमस् घनघोर हुआ ॥

मुझे पड़ी क्या, यही स्वय निज करनी का फल पाएगी।
पाप प्रगट जब होगा तब कर मल-मल के पछताएगी ॥
पारतन्त्र्य के पाश फँसी हूँ शिक्षा का अधिकार कहाँ।
दासी तो गू गी होती है जिह्वा की झनकार कहाँ ?"
दिल मसोस गिर पडी चरन मे, कपट-नम्र हो यो बोली।
"क्षमा करे अपराध स्वामिनी! मै दासी 'अथ इति' भोली ॥
बोल-चाल का ढग न मुझको ठीक तौर से आता है।
अन्दर है कुछ और भाव, पर निकल और ही जाता है॥
रभा तो चरणो की चेरी, जन्म-जन्म की दासी है।
कैसे तुमसे अलग हो सके, पूर्णतया विश्वासी है॥
कार्य आपका सफल करू गी, ऐसा मन्त्र चलाऊंगी।
सेठ सुदर्शन को श्री चरणों पर शीघ्र झुकाऊँगी॥
झेलूगी सब कष्ट, प्राण अपनों की भेट चढा दूगी।
'रभा तुझे धन्य है' इक दिन श्रीमुख से कहला लूगी ॥"

रंभा के मधु वचन सुने तो अभया का मुख कमल खिला।
हर्षमत्त हो नाच उठी, काफूर हुआ सब रज-गिला ॥
"रंभा ! तू सचमुच रभा है, जो चाहे कर सकती है।
आज विश्व में तू ही, मेरा अखिल दु:ख हर सकती है॥
तू ने ही सब उलझन मेरी आज तलक सुलझाई है।
मन में जो कुछ उठी कामना झटपट सफल बनाई है ॥
आशा क्या, निश्चय है, यह भी कार्य सिद्ध तुझ से होगा।
अब के भी यश-मुकुट विजय का तेरे ही सिर पर होगा॥"

कहते-कहते शीघ्र कठ से मुक्ता-हार निकाला है।
चम-चम करता रभा की गर्दन मे खुश हो डाला है॥
देखा, कैसा अजब ढग है स्वार्थी दुनिया-दारी का।
पूर्ण अटल है राज्य सर्वतः वदकारी मक्कारी का॥
झूठे मौज करे मन चाही, सच्चो का मुँह काला है।
धोखेबाजो ने भोली जनता पर फदा डाला है॥
सत्य कहे तो मारन धावे, झूठे जग पतियाते है।
कपट-कृपा से माल मुफ्त का अनायास हथियाते है॥

कौन सुनता है किसी की सत्य वाते आजकल,
सत्य-भक्तो की निकाली जाती आते आजकल।
प्रेम से हित से सुनाए यदि कही हित के वचन,
सहस्र-वृश्चिक-दश की ज्यो तिलमिलाते आजकल।
गैर तो क्या मित्र होगे, सत्य की शिक्षा दिये,
प्राण-प्यारे भी कुटिल आँखे दिखाते आजकल।
'हाँ' में 'हाँ' रहिए मिलाते बनिए पक्के जी हुज़ूर,
'हाँ जी' के पुतले ही गुलछर्रे उडाते आजकल।
झूठ तेरा राज्य है, चहुँ ओर तेरी पूछ है,
झूठ के वल शठ भी जग-मान पाते आजकल।
हा खुशामद ने दिया तखता पलट संसार का,
रात्रि मे रवि, दिन मे तारागण, उगाते आजकल।
आयगा वह भी समय मिट जायगा दुनिया से खोज,
झूठ की वंशी "अमर" हँस हँस वजाते आजकल॥

रभा ने सब काम छोड, अब यही काम अपनाया है।
नित नई कल्पना करती है, चिन्ता का चक्र चलाया है॥

"राज-महल पर पहरा है, किस तरह सेठ को ले आऊँ ?
कठिन समस्या अडी खडी है, कैसे इसको सुलझाऊँ ?"

बैठी थी एकान्त अचानक यह विचार मन मे आया।
रभा के मूर्छित मानस मे स्पन्दन का दौरा आया॥

दौड़ी गई उसी दम, जा कर मूर्तिकार से वतलाई।
सेठ सुदर्शन की सुन्दर मिट्टी की मूरत बनवाई॥

लाल वस्त्र से ढँक मस्तक रख राजद्वार पर आई है।
द्वारपालकों के ठगने को कैसी बुद्धि लड़ाई है॥

प्रथम द्वार पर प्रहरी ने रोका, "क्या ले जाती है ?
मस्तक पर क्या बला रखी है? मुझ को क्यो न दिखाती है?"

रंभा बोली "तुझे मूढ ! कुछ पता नही है, मै क्या हूँ ?
राज-महल की एक मात्र विश्वास-पात्र मै बाला हूँ॥

रानी जी इन दिनो वैश्रमण देव-अर्चना करती है।
भक्ति-भाव से भेट चढ़ा कर पुत्र-कामना करती है॥

एतदर्थ रानीजी ने यह देव-मूर्ति मँगवाई है।
वस्त्र-ढँकी ही ले जानी है, अस्तु नही दिखलाई है॥

आज्ञा जैसी मिली मुझे है, करके वही निभाऊँगी।
चाहे कुछ भी करले मूरत बिल्कुल नही दिखाऊँगी॥"

द्वारपाल ने कहा—"व्यर्थ ही रभा ! तू हठ करती है।
राजा का है हुक्म, बिना देखे कैसे जा सकती है॥
मै भी देखूगा तू कैसे मुझे नही दिखलाएगी ?
राजाज्ञा कर भंग. महल के अन्दर कैसे जाएगी ?"

रंभा ने यह द्वारपाल का वचन सुना तो क्रुद्ध हुई।
पटकी झट ऊपर से मूरत, खड-खंड हो भग्न हुई॥
बोली कृत्रिम क्रोध बता कर—"इसका मजा चखाऊँगी।
जाती हूँ रानी से कह कर फाँसी पर लटकाऊँगी॥
पूजा-जैसी मगल-कृति मे व्यर्थ भयकर विघ्न किया।
रानी जी के इष्ट देव का तूने अति अपमान किया॥"

द्वारपाल घबराया दिल मे गर्व-मेरु चकचूर हुआ।
हाथ जोड़ कर लगा मनाने 'जी-जी' का मजदूर हुआ॥
"गलती मुझसे विकट हुई, पर क्षमा कीजिए करुणा ला।
रानी से बिल्कुल मत कहना, मूर्ति दूसरी देना ला॥
आगे तू कुछ भी ले जाना, मैं न कभी भी रोकूगा।
सभी भाँति सहयोग करूगा, गलती यह सब धो दूगा॥"

रंभा राजी हुई, मनोरथ पूर्ण हुआ, सब काम बना।
द्वारपाल प्रतिरोधी था - वह अनुरोधी अभिराम बना॥
चालाकी से इसी भाँति सातों दरवाजे खोल लिए।
द्वारपाल सातो ही अपने भावों के अनुकूल किए॥
मस्तक पै रख मूर्ति मजे से प्रतिदिन आती जाती है।
देखा-परखा वार-वार, पर, कही न अडचन पाती है॥



सर्ग छह

वज्र-संकल्प

सेठ सुदर्शन का इधर, सुनिए वर वृत्तान्त,
कैसे मृदु जीवन बना, वज्र-कठिन उत्क्रान्त।
भोग रहे थे सेठजी, सुख-पूर्वक गृह-वास;
पुण्ययोग से दुःख का, था न जरा अवकाश !

शरद काल का समय अनूठा कार्तिक मास सुहाया है।
श्रेष्ठ कौमुदी उत्सव प्यारा पूनम के दिन आया है॥
भारत में यह उत्सव भी अति मगल-कारी होता था।
युवक-वृन्द इक नई लहर में उस दिन खाता गोता था॥
सूर्योदय-से-सूर्योदय तक उपवन मे ही रहते थे।
शान्त स्वच्छ शीतल रजनी मे नृत्य गान सब करते थे॥
राजाज्ञा थी, कोई भी नर, नही नगर मे रह सकता।
गुप्त रूप से रह जाने पर राज-दण्ड सहना पड़ता॥
और नगर में इधर नारियाँ निज स्वातन्त्र्य मनाती थीं।
रगरेलियाँ करती हिलमिल, प्रेम-पयोधि बहाती थीं॥

सेठ सुदर्शन जी ने इस दिन परम पुण्य सकल्प किया।
भोग-मार्ग तज आत्म-शुद्धि के अर्थ त्याग का मार्ग लिया।।
अन्तिम तिथि है चतुर्मास की, पौषध का व्रत करना है।
कर रक्खा है गुरुवर से प्रण, पाप-पक सब हरना है।।
राजा के जा पास नगर मे रहने की स्वीकृति ले ली।
धन्य सुदर्शन धर्म-कौमुदी-उत्सव की क्रीड़ा खेली।।
शान्त, कान्त, एकान्त स्थान मे पौषधशाला सुन्दर थी।
वातावरण शान्त था, कोई खटपट थी ना गडबड थी।।
काष्ठ-पट्ट पर शुद्ध स्वदेशी आसन विमल विछाया है।
पद्मासन सानन्द लगा दृढ पौषध व्रत अपनाया है।।
वीर प्रभू की साक्षी से की अटल प्रतिज्ञा अगीकार।
गूँज उठी मन मन्दिर में जिन-धर्म-विपची की झनकार।।
"भगवन्! अब से सूर्योदय तक तजता हूँ चारों आहार।
काम,क्रोध,मद,लोभ, मृषादिक तजूँ अठारह पापाचार।।
ससारी गृह-झझट से विश्रान्ति आज कुछ लेता हूँ।
आत्म-साधना मे तन, मन का योग क्लेश-हर देता हूँ।।
लेशमात्र भी पाप कर्म का भाव न मन में लाऊँगा।
अन्तस्तल मे धर्म ध्यान का सुन्दर साज सजाऊँगा।।
चाहे कुछ भी सकट आए, स्वीकृत पंथ न छोडूगा।
फँसकर सुखद प्रलोभन मे भी कभी न निज-व्रत तोडूगा।।"

पौषध व्रत को सफल वनाते दिन सानन्द समाप्त किया।
शीतलनम रजनी ने आकर उष्ण दिवस का स्थान लिया।।

शुद्ध हृदय से पाप-पकहर प्रतिक्रमण विधि से कीना।
शास्त्र रीति से कृत पापो का प्रायश्चित विधि से लीना॥

प्रतिक्रमण से निबट जिनेन्द्र स्तुति का पथ अभिराम गहा।
भक्तिसुधा की सुर-सरिता का कलिमलहरण प्रवाह बहा॥

वीर प्रभू के श्री चरणो मे नम्र प्रार्थना करता है।
स्वार्थ-रहित सुविशुद्ध भक्ति का रूपक प्रस्तुत करता है॥

जीवन सफल वनाना, बनाना,
प्रभू वीर जिनराज जी !

मन-मन्दिर मे घुप है अँधेरा,
ज्ञान की ज्योति जगाना, जगाना प्रभू०!

धँधक रहा है द्वेष दवानल,
प्रेम की गगा बहाना, बहाना प्रभू०!

भोग-वासना दाह लगी है,
अन्तर-तपत बुझाना, बुझाना प्रभू०!

अगम भँवर मे नैय्या फँसी है,
झट-पट पार लगाना, लगाना प्रभू०!

न्याय मार्ग का पक्ष न छोड़ूँ,
दुश्मन हो सारा जमाना, जमाना प्रभू०!

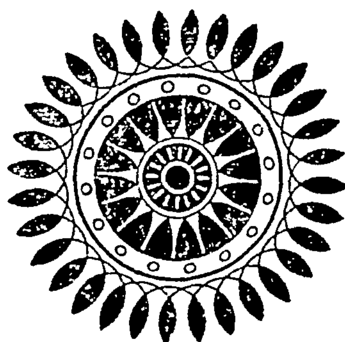
उत्कट सकट हँस हँस झेलू,
अविचल धैर्य बँधाना, बँधाना प्रभू०!

प्राणी-मात्र को सुख उपजाऊँ,
चाहूँ न चित्त दुखाना, दुखाना प्रभू०!

मै भी तुमसा जिन वन जाऊँ,
परदा दुई का हटाना, हटाना प्रभू०!

'अमर' निरन्तर आगे वढू मैं,
कर्तव्य-वीर वनाना, वनाना प्रभू ०!

सेठ प्रार्थना के पल-पल मे, सद्भावों में लीन रहा।
भक्त-हृदय में भक्ति-भाव का दिव्य स्रोत उन्मुक्त बहा ॥
"वीतराग तव शरण जगत में एकमात्र सुखदायी है।
घोर दुखों के आने पर भी होता तू ही सहायी है ॥
भक्तों का जो कुछ गौरव है मात्र तुम्हारी करुणा है।
दीन-बन्धु! मुझको तो तुम से बढ़कर और न शरणा है ॥
आ जाओ मन-मन्दिर में, हे नाथ! शीघ्रतम आ जाओ।
पाप-पंक से पूरित मेरा हृदय पवित्र बना जाओ ॥
एक प्रहर तक नाथ! तुम्हारा ध्यान-हृदय में लाऊँगा।
मौन रहूँगा, तुम्हे रटूँगा, जग की ओर न जाऊँगा ॥"



सर्ग सात

अग्नि-परीक्षा

धार्मिक जन निज धर्म में रहते यों संलग्न ।
पापात्मा आकर वृथा करते नर्तन नग्न ।।

सेठ सुदर्शन जी ने इस विधि प्रभु का ध्यान लगाया है ।
रभा ने उस ओर दंभ का पूरा जाल बिछाया है ।।
देख लिया था दिन मे ही सब अवसर मायाचारी का ।
चली सेठ को सिर पर रख, आगया नाश मक्कारी का ।।
ध्यान-मग्न था सेठ, प्रतिज्ञा-पालन मे सलग्न रहा ।
बोला नही जरा भी, पहले जैसा ही दृढ मौन रहा ।।
द्वारपाल थे पहले भ्रम मे, नही विचारे कुछ बोले ।
धोखे मे फँस हो जाते है चतुर विचक्षण भी भोले ।।
सब के आगे से ही निधडक राज-महल मे पहुँच गई ।
भडा फोड हुआ न बीच मे, निर्भयता की सास लई ।।
पहले से ही निश्चित था जो पूर्ण सुसज्जित शयनागार ।
कण-कण मे फैल रही थी जिसके विषय वासनाओं की धार ।।

बैठा सेठ सुदर्शन को वह रानी से जाकर बोली।
"कीजे भेट सुदर्शन से अब, भर लीजे सुख की झोली ॥
मैने तो निज कार्य पूर्ण कर दिया, तवाज्ञा पाली है।
आगे तुम वह महल खडा करलो कि नीव जो डाली है ॥"

रानी अपने चित्त से, हर्षित हुई अपार,
चली शयन-आगार को, सज सोलह शृगार।
रूप मनोहर खिल उठा, इन्द्राणी अनुहार,
झलमल झलमल हो रही, शोभा का क्या पार ?

रक्खा पैर भवन मे ज्यो ही दृश्य और का और हुआ।
रग रूप रानी का मोहकता में मोहक और हुआ ॥
रंग-रगीले झाडों से रगदार रौशनी झडती थी।
पडती थी रानी के मुख पर सुन्दरता अति वढती थी ॥
नाना-भाँति सुगन्ध महल में मादकता बरसाता था।
काम-सरोवर अपनी पूरी सीमा पर लहराता था ॥
रानी ने जो सेठ सुदर्शन देखा, तो वस चकित रही।
कामदेव साक्षात अमित सौन्दर्य-सुधा थी वरस रही ॥
आखे झपकी एक वार ही सह न सकी वह तेज प्रचड।
आधा तो वस दर्शन से ही हुआ विलज्जित रूप-घमड ॥
साहस करके फिर भी अपना मोहन-जाल विछाती है।
प्रेमभाव से गद्गद हो चरणो मे शीश झुकाती है ॥
"प्राणनाथ! मै वहुत दिनो से तव दर्शन की इच्छुक थी।
जलधर के प्रति चातक जैसी निश दिन रहती उत्सुक थी ॥

मुझे आपका एक सखी ने मोहन-रूप सुनाया था।
तब से ही मम हृदय-भवन मे प्यारा नाम समाया था॥
रभा के द्वारा मैने ही तुम्हे यहाँ बुलवाया है।
मनोवासना-पूर्ति-हेतु यह सारा साज सजाया है॥
राजा जी है गए आज उपवन मे क्रीडा करने को।
आजादी के साथ सुअवसर पाया तुमसे मिलने को॥
राजा का या और किसो का भय न हृदय में रखिएगा।
दासी की चिर अभिलाषा नि.शंक पूर्ण अब करिएगा॥"

रानी के वचनो से कुछ भी नही सुदर्शन सिक्त हुआ।
ध्यान-मग्न पहले जैसा ही रहा, न चंचल चित्त हुआ॥
वैरागी मुख-चन्द्र-बिम्ब पर नही विकृति छाया आई।
रानी खुद ही हतप्रभ सी हो मन-ही-मन मे शरमाई॥
हाव-भाव के साथ विलासी वचनो से फिर भी बोली।
खुल्लम-खुल्ला नग्न वासनाओ की विष-गठरी खोली॥

भोगो भोग प्रेम से आज सेठ जी नई जवानी है,
नई जवानी है, सेठ जी नई जवानी है।
सूरत मोहन-गारी प्यारी, नयन-ममानी है,
तन मन धन सब वारूँ तुझ पर तू दिल-जानी है।
दासी श्रीचरणो की अभया, नही बिगानी है,
रूप-माधुरी-मुग्ध तुम्हारे हाथ-बिकानी है।
तडफत हूँ दिन रैन मछलिया ज्यो बिन पानी है,
आग विरह की सुलग रही, वह आज बुझानी है।
आख खोल कर देखो कैसी छवि लासानी है,
रूप-गर्विता इन्द्राणी भी देख लजानी है।

स्वर्ग नरक के भ्रम मे दुनिया व्यर्थ भुलानी है,
झूठा धुधपसारा ना कुछ आनी-जानी है।
यौवन-वय मे जप तप करना शक्ति गॅवानी है,
कोमल कचन-वर्णी काया व्यर्थ सुकानी है।
भोगो भोग मजे से जब तक यह जिन्दगानी है,
आखिर पॉच तत्व की पुतली गल सड जानी है।
अवसर हाथ लगा खो देना, अति नादानी है,
दया कीजिए नाथ! प्रेम की गाठ जुडानी है।

मौन प्रतिज्ञा पूर्ण हुई, अब ध्यान सेठ ने खोला है।
रानी समझी काम बना, दृढ आसन कुछ तो डोला है॥
लेकिन सेठ सुदर्शन-मन पर नही विकृति की रेखा थी।
निष्प्रकप मन्दराचल-सम डिगने की कुछ न अपेक्षा थी।
फिर भी रानी को समझा, सत्पथ पर लाना चाहा है।
पतन-गर्त मे गिरने से अविलम्ब बचाना चाहा है॥
"माता जी! श्रीमुख से यह क्या गदा जहर उगलती है।
शान्त हृदय विक्षुब्ध हुआ है, रग-रग मेरी जलती है॥
नृप-पत्नी जनता की माता शास्त्र गवाही देता है।
यह दूषित प्रस्ताव आपके मुख शोभा कब देता है॥
कामवासना-पूर्ति चाहती हो, पुत्रो द्वारा कैसे?
पशुओ जैसा अधमाधम यह कृत्य तुम्हे भाया कैसे?
यदि इस भॉति राजवश की ललनाएं भी डूबेगी?
तो कैसे जग इतर नारिया शील धर्म पर झूमेगी?
दुराचार के पतन-मार्ग चढ़ पाप भार क्यो ढोती है।
क्षणिक सुखो के लिए पति-व्रत धर्म अमोलक खोती है।

स्वर्ग-नर्क का कथन सत्य है, नही झूठ का अश जरा ।
अच्छी और बुरी करनी का मिलता है फल सदा खरा ॥
भोग-वासना में फँसने को मिला नही नर-तन प्यारा ।
जीवन सफल बनाया उसने, जिसने शील रत्न धारा ॥
मैने तो जब से इस जग में कुछ-कुछ होश सँभाला है ।
माता और बहन सम पर-नारी को देखा-भाला है ॥
मुझ से तो यह स्वप्न तलक मे भी आशा मत रखिएगा ।
तैल नही है इस तिलतुष मे चाहे कुछ भी करिएगा ॥
स्वयं स्वर्ग से इन्द्राणी भी पतित बनाने आजाए ।
तो भी वज्र-मूर्ति-सा मेरा मन-मेरु न डिगा पाए ॥
पाप कर्म के फल से मै तो प्रतिपल ही भय खाता हूँ ।
और तुम्हे भी माता जी ! बस यही भाव समझाता हूँ ॥"

मत पीवे पियाला विषय रस का !
काम-वासना जहर हलाहल,
नाश करे सुकृत रस का ।
ले डूबेगा अगम भँवर मे,
ऐसा लगा है बुरा चसका ।
क्यो तू जवानी मे, हुई है दिवानी,
जीवन है यह दिन दश का ।
रगरेलियाँ धरी ही रहेगी,
काल अचानक आ धसका ।
दुर्गति मे जव कष्ट मिलेगे,
नशा उतर जाय नस-नस का ।

राजवश की तू कुल-गृहिणी,
दाग लगा मत अपयश का।
सयम का सत्पथ अपना ले,
मनुष्य जन्म फिर नही वश का।

सेठ सुदर्शन से रानी ने रूखा उत्तर पाया है।
अभिलाषा का चिर पोषित कल्पित कमल-पुष्प कुम्हलाया है।।
"मै ग़लती से जिसे मृदुल मिट्टी का ढेला समझी थी।
वज्र-शिला-सा निकलेगा वह, नही जरा भी समझी थी।।
रूपमाधुरी पर ललचाए, सेठ न ऐसा कामी है।
पक्का है निज प्रण पर बिल्कुल, नही भोग-पथ गामी है।।
जगत-विमोहन अस्त्र आखिरी अब इक और चला देखू।
वैभव के अति सुखद प्रलोभन का नव-जाल रचा देखू।।"

"वैरागी जी, रहने दीजे, बस विराग की ये बाते।
धर्म-धूर्त तुम जैसो की मै समझूँ हूँ सारी घाते।।
अन्दर ज्वाला भडक रही है, ऊपर धर्म दिखावा है।
क्या लोगे इन बातों में ? सब झूठा यह बहकावा है।।"

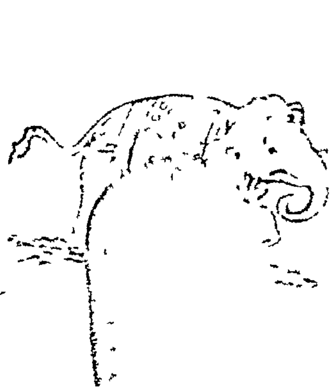
न ताने ज्यादा, कृपा करे अब,
वडा तुम्हारा लिहाज होगा,
अगरचे राजी करेगे मुझको,
सफल तुम्हारा भी काज होगा।
समग्र चपा का राज्य वैभव,
तुम्हारे चरणो मे आ झुकेगा;

न देर होगी नरेन्द्रता का
तुम्हारे मस्तक पै ताज होगा।
यह महल मन्दिर, यह फौज लश्कर,
यह स्वर्ण - सिहासन राजशाही'
तुम्हारी मुट्ठी मे होगा सब कुछ,
सुरेन्द्र-सा सौख्य-समाज होगा।
जुटेगे सारे सुखो के साधन,
मजे में गुजरेगी जिन्दगी सब,
स्वतत्र शासन सदा चलाना,
अखड सब पै स्वराज होगा।
समझले अब भी न विगडा कुछ है,
विनम्रता से कहती हूँ तुमसे,
अगर न माने तो देख लेना,
ठिकाने जल्दी मिजाज होगा।
लगेगा पल भर, चलेगा खजर,
गिरेगा मस्तक जमी पै कट कर,
तडफ-तडफ कर वनेगा ठढा,
यह जालिमाना इलाज होगा।
न काम आएगा धर्म तेरा,
कुटुम्ब होगा विनष्ट सारा,
क्यो खोता नाहक अमूल्य जीवन,
सदा न हर्गिज यह साज होगा।

सेठ-हृदय पर इन बातो का हुआ जरा भी नही असर।
अभया का निकला यह भी जग-मोहनकारी अस्त्र लचर ॥
धर्मवीर को कोई भी पथ भ्रष्ट नही कर सकता है।
सागर का गंभीर रूप क्या झझानिल हर सकता है ॥

बोला नि:संकोच जरा भी, नही हृदय मे सकुचाया।
साफ साफ शब्दों में अपना दृढ़ निश्चय यह बतलाया॥

सुदर्शन ऐसी बातो मे, कभी हर्गिज न आएगा;
खुशी से अपना यह सर, सत्य के पथ पर कटाएगा।
गृहांगण में अमित लक्ष्मी, सदा अठखेलियाँ करती,
तुम्हारे तुच्छ वैभव पर भला क्यो कर लुभाएगा।
जडे इस राज्य की गूगी प्रजा के खून से तर है,
घृणा है स्वप्न तक में ध्यान लेने का लाएगा।
मिले यदि इन्द्र का आसन पदच्युत धर्म से होकर,
न लेगा, भीख दर-दर की भले ही माग खाएगा।
डराती क्या है पगली ! मौत का डर तू दिखा मुझको,
खुशी से जेरे-खंजर शीश झट अपना झुकाएगा।
न कुछ जीवन की परवा है, न कुछ मरने का डर दिल में,
मुसीबत लाख झेलेगा, मगर निज प्रण निभाएगा।
तुझे करना हो जो करले, खुली है छूट तेरे को,
अटल निज सत्य की महिमा सुदर्शन भी दिखाएगा।



सर्ग आठ

शूली के पथ पर

सेठ सुदर्शन का मधुर अमृतमय उपदेश,
अभया को विषमय हुआ, देखो पापावेश ।

रानी भडक उठी यह सुन कर, नही क्रोध का पार रहा ।
तार-तार होगई हिताहित का न जरा सुविचार रहा ॥
"झूठे भ्रम मे फँस कर मैने निज व्यक्तित्व गँवाया है ।
बना न कुछ भी काम व्यर्थ ही परदा-फाश कराया है ॥
प्रात.काल हुआ है, कैसे अब निज लाज बचाऊँगी ?
सूर्योदय होने वाला है, कैसे इसे छुपाऊँगी ?
जालिम ने मम आशाओं पर बिल्कुल पानी फेर दिया ।
मै अभया क्या, अगर इसे अब यो ही जीवित छोड दिया ।"

बोली सेठ सुदर्शन से—"ले अब कैसा हाल बनाती हूँ ?
मानी बात नही, अब उसका कैसा मजा चखाती हूँ ?
देख तमाशा मेरा, जौहर अपना क्या दिखलाती हूँ ?
रे जालिम ! मक्कार ! ! तुझे अब शूली पर चढवाती हूँ ॥

मेरे एक हुक्म से तेरा कुछ का कुछ हो जाएगा।
तड़फेगा, सिसकेगा, तन से प्राण पृथक् हो जाएगा ॥"

बाल बिखेरे, चीवर फाड़े, विकृत रूप बनाया है।
स्थान-स्थान पर अग नोच कर शोणित-सा झलकाया है ॥
ऑखो मे आँसू की धारा बही, जोर से चीख उठी।
आस-पास के जनप्रदेश में रोदन की ध्वनि गूज उठी ॥
"दौडो-दौड़ो, आज महल में कौन दुष्ट घुस आया है ?
अकस्मात् किस पापी ने सोती को मुझे दबाया है ॥"

द्वारपाल सब क्रदन सुन कर सहसा अति ही घबराए।
हाथो मे ले नग्न खड्ग बस मार-मार करते धाए ॥
अन्त पुर की रक्षक सेना ने भी फौरन कूँच किया।
राज-महल पर पलक मारते चहुँ-दिशि घेरा डाल दिया ॥
सेनापति कुछ सैनिक लेकर, शीघ्र महल में आया है।
चौक उठा, सहसा, जब बैठा सेठ सुदर्शन पाया है ॥
क्या करता, कर्त्तव्यपाश मे फँसा हुआ था बेचारा।
रानी की आज्ञा से झटपट लौह-निगड में कस डारा ॥
राजा को भी खबर लगी, तो दौड बाग से झट आया।
क्या कुछ कैसे हुआ ? धूर्त रानी ने यों सब बतलाया ॥
"प्राणनाथ! क्या पूछो हो, अति भीषण अत्याचार हुआ।
शील-धर्म मे च्युत करने के लिए दुष्ट तैयार हुआ ॥
मैने जो धिक्कारा, तो बस [illegible] करना
अग नोच कर, वस्त्र फाड कर,

मैने आज बडी मुश्किल से अपनी लाज बचाई है।
बस, प्रताप से नाथ ! तुम्हारे, इज्जत रहने पाई है ॥
कौन दुष्ट है, कौन नही है, कैसे सहसा आ धमका।
देखे शीघ्र वहाँ कमरे मे, पता लगाएँ जालिम का ॥
पूछताछ बिन ही पापी को शूली तुरत चढ़ा देना।
मुझ पर भारी जुल्म हुआ है, नाथ ! अवश्य बदला लेना ॥
प्राण दुष्ट के हाय-हाय मे तड़फ-तडफ कर छूटेगे।
मेरे पीडित अन्तस्तल के तभी फफोले फूटेगे ॥
अगर लाज से या दबाव से उसे अछूता छोडेगे।
तो निश्चय ही मेरे से चिर-प्रेम-शृङ्खला तोड़ेगे ॥
अपमानित होकर मै कैसे जग में मुँह दिखलाऊँगी ?
याद रखे, फाँसी का फंदा लगा, स्व-प्राण गँवाऊँगी ॥"

राजा ने यह सुन रानी को अपने वक्ष लगा लीना।
मीठे स्नेह-भरे वचनो से कपट-कोप उपशम कीना ॥
शयन-कक्ष में आया राजा, सेठ सुदर्शन को देखा।
क्रोधान्ध हुआ, भडका तडका, सब लुप्त हुई सन्मति-रेखा ॥
"रे जालिम! मक्कार! ! कमीने! ! ! तेरी इतनी मक्कारी ?
घुस आया बेखौफ महल मे बदकारी दिल में धारी ॥"

"सेनापति ! ले चलो सभा मे, मैं भी जल्दी आता हूँ।
कामुकता उन्मादकता का पूरा मजा चखाता हूँ ॥"

न्यायालय मे स्वर्णासन पर राजा बैठा गर्वित है।
और सामने सेठ सुदर्शन बंदी बना उपस्थित है ॥

आस-पास मे मंत्रीदल भी बैठा है कुछ चिन्ताग्रस्त।
दर्शक जनता की भी भारी भीड़ खड़ी है भय से त्रस्त ॥

राजा बोला "कहो सेठ जी ! यह क्या भूत सवार हुआ ?
कैसे भीरु हृदय में तेरे पैदा यह कुविचार हुआ ?
तू तो पक्का दृढ धर्मी वर भक्तराज बन फिरता था।
अपने आगे सारे जग को पापी नीच समझता था ॥
राजहस के विमल वेष में कौवा मक्कारी निकला।
सदाचार का एक न कण भी, घोर दुराचारी निकला ॥
क्या तू उस दिन इसी कर्म पर मुझको ज्ञान सिखाता था।
धर्मगुरू बन शिक्षा के मिस ताने मुझे सुनाता था ॥
तेरा इतना दु साहस, जो मेरी भी परवा न करी।
अन्तःपुर मे घुस आया, खुद रानी से भी छेड करी ॥
मुझको क्या था पता दुष्ट तू, इसी हेतु यहाँ रहता है।
आज्ञा लेकर धर्म-क्रिया की यों छलछन्द विरचता है ॥
क्या जाने, किस-किस नारी को तूने भ्रष्ट किया होगा ?
गुप्त रूप से दीन प्रजा पर क्या-क्या जुल्म किया होगा ?
बतलादे सब सत्य-सत्य जो कुछ भी घटना बीती है।
काम-मत्त हो कर के तूने कैसे की मन-चीती है।"

सेठ सुदर्शन ने निज मन में सोचा "समय भयंकर है !
अपने मुख से भेद खोलना नही अभी श्रेयस्कर है ॥
व्यर्थ सफाई देने से कुछ भी न स्पष्ट हो पाएगा।
गुप्त सत्य है, कौन मनुज विश्वास-भावना लाएगा ?

अपने मुख से अपनी शुचिता, कभी न शोभा देती है।
आता है जब समय स्वय वह निज को चमका देती है॥
रानी को मैने वास्तव मे मातृ-स्वरूप निहारा है।
और निजानन से माता कह कर सस्नेह पुकारा है॥
जिसको माता कहा उसी के प्रति, गन्दी वाणी बोलूँ।
मारी जाएगी बेचारी, गुप्त भेद यदि मै खोलू॥"

मन्द-स्मित निर्भय यो बोला "राजन्! मै क्या बतलाऊँ?
आप स्वय है, समझदार बस, और कहो क्या समझाऊँ?
जैसी भी है, जो कुछ भी है, बात गुप्त ही रहने दे।
दण्ड दीजिए जो भी दिल मे आए कसर न रहने दे॥"

रहस्य-भरी घटना है,
बताऊँ क्या सरकार!
कौन है कहता मुझको धर्मी
मैं तो बडा कुकर्मी,
घोर कलिमल-भडार!
अन्तर-शोधन मे मन लाया,
मुझ से बुरा न कोई पाया,
सभी खोजा ससार!
तदपि न ऐसा पतित हिया है,
जैसा तुमने समझ लिया है,
पाप का ही अवतार!
स्वर्ग से देवी भी चल आए,
तो भी चित्त न डिगने पाए,
शील अविचल अविकार!

सत्य का भेद स्वय मै खोलू,
होकर दीन हीन-सा बोलू,
नही मुझको स्वीकार !
सत्य का दिनकर खुद चमकेगा,
अत मे तेज अटल दमकेगा,
झूठ का परदा फार !
प्राणो का मोह नही है,
मौत का कुछ भी खौफ नही है,
चलाएँ सिर तलवार !
धर्म का रग-रग रग समाया,
मिटेगा हर्गिज नही मिटाया,
अमर है दृढ हुकार !

राजा भड़का "अरे नीच ! अब भी न गई तव मक्कारी।
मन मे अब भी मचल रही है शेखी-खोरी हत्यारी॥
सच्चा है, तो क्यो न साफ सब भेद खोल बतलाता है ?
टेढ़ी ही बाते करता है, सीधे मार्ग न आता है॥
अन्तकाल है निकट मृत्यु तव मस्तक पर मॅडराती है।
बुद्धि भ्रष्ट हो गई सर्वथा लज्जा तनिक न आती है॥
वीर सैनिको ! ले जाओ, झट शूलो दो, मरवा डालो।
और लाश को खड-खंडकर कुत्तो से नुचवा डालो॥"

शूली का आदेश सुना, तो सन्नाटा सब ओर हुआ।
चित्रलिखित से हुए सभी जन शोक-सिन्धु का दौर हुआ॥
सेठ सुदर्शन एक मात्र परिषद् मे बैठा हँसता था।
आँखो में तेज चमकता था मुखविधु पर नूर बरसता था॥

"भूपति ! मुझ से अपराधी को, यह क्या पामर दंड दिया ।
उत्तेजित हो तुमने कुछ भी नही बुद्धि से काम लिया ॥
प्राणदड की खातिर तो मै था पहले से ही राजी ।
और दीजिए दंड कठिन कुछ, क्योकि सेठ अति है पाजी ॥

मृत्यु नही है, यह तो मुझ मे नूतन जीवन डालेगी ।
पाप-कालिमा जन्म-जन्म की मल-मल कर धो डालेगी ॥

दुनिया कुछ भी समझे मुझको इससे क्या लेना-देना ?
नश्वर जग मे सार यही है, जीवन सफल बना लेना ॥

मै क्या प्रभो ! मरूगा, आखिर मृत्यु अनृत की ही होगी।
भौतिक बल पर नियत अन्त मे विजय सत्य की ही होगी ॥

देखूगा वह शूली कैसे मुझको मार गिराएगी ।
केवल जड तन पर, या कुछ मुझ पर भी असर जमाएगी ॥

अजर अमर हूँ सदा सर्वदा, मरा न अब मर सकता हूँ ।
त्यागे देह अनन्त आज भी समुद त्याग कर सकता हूँ ॥"

"ले चलो दोस्तो ! शीघ्र वही, उस स्वर्गारोहण के पथ पर।
पापभरी दुनियाँ से निकलू, अमर शान्ति अवलबन कर ।"

राजा उत्तर दे न सका कुछ, हुआ खूब ही खिसियाना ।
देख अटल गभीर सेठ को दिल मे अति अचरज माना ॥

इसी बीच श्रीयुत मतिसागर मत्री सम्मुख आया है ।
हाथ जोडकर विनय-सहित नृप-चरणो शीश झुकाया है ॥
"देव ! हृदय में सोचे तो कुछ यह क्या पाप कमाते है ?
अगराष्ट्र के प्राण सेठ को शूली आप चढाते है ॥

मैने परख लिया बातो से, नही सुदर्शन दोषी है।
तेजस्वी, निर्भीक, साहसी होता कभी न दोषी है॥
सेठ सत्य ही कहता है, यह भेद खोलना ठीक नही।
मेरे मत से भी यह घटना जा पहुँचेगी और कही॥
श्रेष्ठ वंश चपा का भ्रमवश नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा।
हा ! अबोध बालक, गृहणी सब परिजन रुदन मचाएगा॥
प्राण-दड है घोर दड, कुछ सोच-समझ कर काम करे।
क्या परिणाम आखिरी होगा कुछ तो दिल मे ध्यान धरे॥"

राजा आँखे लाल-लाल कर क्रोध-विकल होकर गरजा।
"रहने दे बस शिक्षा अपनी, मेरे आगे से हट जा॥
न्याय निपुण बनता है खुद तो, मुझको मूर्ख समझता है।
वक्त और वेवक्त धर्म का पुच्छल पकड़े फिरता है॥
तुझमे आदत बडी निकम्मी, नही कभी भी टलता है।
जब भी मै कुछ काम करूँ, तब तू ही केवल अडता है॥
राजसभा में और बहुत से भी तो है ये अधिकारी।
कोई भी कुछ नही बोलता, तेरी है बक-बक जारी॥
साफ जान पडता है तूने इससे रिश्वत खाई है।
आखों के गुप्त इशारो से ही खूब रकम ठहराई है॥
अगर और कुछ अनघड बाते मुझ से आगे बोलेगा।
साफ-साफ कहता हूँ नाहक अपना जीवन खो देगा॥"

आस-पास से 'पागल है, पागल है' की ध्वनि गूज उठी।
जी हुजूर अधिकारी दल की टोली हँसकर गरज उठी॥

"बेवकूफ है, जाहिल है, जो नरपति के मुँह लगता है।
शेखी मे आ बिना बात ही न्याय-कार्य में अड़ता है॥
अपराधी को दडित करना राजा की दृढ़ नीती है।
नही नजर आती हमको तो इसमें कुछ अनरीती है॥
अगर सेठ ने इस घटना मे जरा नही झखमारी है।
तो फिर क्या रानी जी की ही यह सारी मक्कारी है॥
राम! राम!! श्रीरानी जी को इस प्रकार लांछित करना।
भरी सभा मे बोल रहा है, राजा का कुछ भी डर ना॥"

मत्री मतिसागर बोला "क्यो, नाहक शोर मचाते हो।
व्यर्थ खुशामद कर राजा को पतन-मार्ग ले जाते हो॥"
"राजा जी! इन खुदगर्जो की आप न बातो में आएँ।
ले डूवेगे अगर हाथ की गुड्डी इन को बन जाएँ॥
मेरा कुछ भी स्वार्थ नही है, सच्ची बाते कहता हूँ॥
रात्रि-दिवस इस राज-मुकुट के हित में चिन्तित रहता हूँ॥"

मुझे क्या, तुम्हे दुख उठाना पडेगा,
अखिल गर्व गौरव गँवाना पड़ेगा।
चढा है नशा, राज-सत्ता का अब तो,
किसी दिन कुमति पर लजाना पड़ेगा।
विजय न्याय की अन्त हो के रहेगी,
अनय को निजानन छिपाना पडेगा।
खुशामद-परस्तो की बातो मे आकर;
अधम धार बेडा डुबाना पड़ेगा।

चढाते जिसे आज शूली उसी के,
चरण मे यह मस्तक झुकाना पडेगा।
सताना न अच्छा, कभी वेगुनाह का,
समय आए आँसू वहाना पडेगा।
बुरा या भला दिल में आए जो माने,
सचाई का रुख तो दिखाना पडेगा।

राजा दधिवाहन, बस, इतना सुनते हो यम-रूप हुआ।
छाया भय सब ओर सभा का रूप समग्र विरूप हुआ॥
"ओ चाडाल! नीच! ! दुर्भागी! ! ! तू किस पर गरबाया है।
बक-बक करता हो जाता है, निज-पद-भान भुलाया है॥
वीर सैनिको! इसको भी निज करनी का फल दिखाला दो।
अन्धकार-मय कारागृह मे डालो, बेडी जडवा दो॥"

आज्ञा पाते ही मंत्री को सैनिक-दल ने पकड लिया।
राजाज्ञा-अनुसार शीघ्र ही कारागृह मे डाल दिया॥
मानव पर जब सकट की घन घोर घटा घिर आती है।
बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है निज हित की नही सुहाती है॥

सर्ग नौ

आदर्श पतिव्रता

इधर सभा में हो रहा भीषण अत्याचार;
उधर नगर मे मच रहा, भारी हाहाकार ।
अन्धकार-सा छा रहा, गली और बाजार,
शोक-सिन्धु मे पूर्णतः डूबे सब नर नार ।
पड़ा अचानक शीश पर, यह क्या वज्र कराल;
सेठ चढ़ाया जायगा, क्या शूली के भाल ?
"दया करें हम पर प्रभो, दीन-बन्धु भगवान;
सेठ हमारे को मिले, सादर जीवन-दान ।"
क्या बूढ़े, बालक, युवा सभी हुए बेभान;
गूंज उठे सब प्रार्थना-ध्वनि से धर्म-स्थान ।

सती शिरोमणि मनोरमा निज सुखद सदन मे बैठी थी ।
आस-पास सुख-मधु बिखरा था, हर्ष-सिन्धु मे पैठी थी ।।
प्रेम-मग्न हो कर पति के चरणो मे ध्यान लगाया था ।
पौषध व्रत के विमल पारणे का सामान जुटाया था ।।

भाग्यवाद का चक्र शीघ्र ही फिरा रंग मे भग हुआ।
शूली की जो खबर लगी तो, सभी रग बदरग हुआ ॥
हा हाकार मचा घर-भर में, आँसू का परिवाह बहा।
नौकर चाकर परिजन सब मे नही शोक का पार रहा ॥
सब से बढकर श्री मनोरमा दु.ख-घात से विह्वल थी।
चित्तवृत्ति अति व्यग्र हुई थी, नही जरासी भी कल थी ॥
हत ! सलिल-नि·सृत मछली के तुल्य अतीव तडपती थी।
मूर्छित होकर बार-बार बेहोश भूमि पर पडती थी ॥

"प्राणनाथ। यह क्या सुनती हूँ, छाती मेरी फटती है।
रोम-रोम मे दु ख-वेदना प्रतिपल सर सर बढती है।
शूली पर वह पुष्प-लता सी देह चढाई जाएगी।
हाय, तुम्हारी चरण-सेविका फिर कैसे रह पाएगी ॥
अमल चन्द्र हो नाथ ! आप, मै स्वच्छ चन्द्रिका प्यारी हूँ।
पुष्प मनोहर आप और मै प्रिय सुगन्ध सुख-कारी हूँ ॥
तुम हो सघन जलद, आपकी मै अन्तर् जल-धारा हूँ।
तुम हो पुरुष और मै हरदम साथ लगी तन-छाया हूँ ॥
नाथ, द्वैत यह सहन हो सकेगा नही कदा-चित भी मुझ से।
पति पत्नी की एक ही गति है, अलग रहूँ कैसे तुम से ॥
छोड दुःख में मुझे अकेली आप स्वर्ग मे जाओगे ?
तोड़ोगे क्या स्नेह-शृंखला, प्रेमी-व्रत न निभाओगे ?
राजा ने यह कौन जन्म का हम से बदला लीना है।
हाय अचानक शूली का जो हुक्म भयकर दीना है ॥

मेरे पति व्यभिचारी हो, यह हो ही कैसे सकता है ?
सदाचार मे उन जैसा दृढ और कौन हो सकता है ?
राजा ने बस द्वेष-भाव से झूठा जाल बिछाया है।
शील-मूर्ति पति के प्राणो पर यह दुर्वज्र गिराया है॥"

कैसा जुल्म असीम गुजारा,
हमने जालिम तेरा क्या बिगारा !
सेठ धर्मी बडे ही गुणी है,
शील धर्म है प्राणो से प्यारा,
माता भगिनी उन्हे है परस्त्री,
आता रच न हृदय विकारा !
क्या तू सचमुच शूली देगा,
अति निर्दय निपट हत्यारा,
फूल-शैय्या पै सोने वाला,
कैसे झेलेगा शूली की धारा !
हाय! छाती मे बिजली सी-कडके,
पूरा चलता जिगर पे है आरा,
पूर्ण स्वर्ग-सुखी-सा कुटुम्ब था,
छाया सकट का अँधियारा !
हाय घर का तो क्या, सारे पुर का,
एक मात्र वही है सहारा,
दीन बालक है रो-रो बिलखते,
आज हो गए ये भी अवारा !
जालिम हमको सता के क्या खुश है,
होगा अन्त भला ना तुम्हारा,
राज्य वैभव यह सब क्षण-भर मे,
उठ जाएगा डेरा यह सारा !

रोते-रोते रुकी मनोरमा ध्यान और कुछ आया है।
राजा पर से द्वेष हटा, मन शान्ति-सिन्धु लहराया है॥
"री मनोरमा, तू तो बिल्कुल बुद्धिमूढ निकली पगली।
स्वार्थ-मोह ने तेरी उज्ज्वल धर्म-बुद्धि सब ही ठग ली॥

राजा का क्या दोष, व्यर्थ ही उसको लाछन देती है।
मात्र निमित्त बना है वह तो, लक्ष्य न जड पर देती है॥

कौन किसी को दुख देता है, सब निज करनी का फल है।
जो कुछ बाँधा कर्म शुभाशुभ, होता तनिक न निष्फल है॥

मानव तो क्या चीज, इन्द्र तक इससे छूट न सकते है।
कर्मो के आगे तो प्रभु अरिहत तलक झुक सकते है॥
और कर्म ! हॉ, वह भी तो है पूर्वजन्म का ही पुरुषार्थ।
तोडा जा सकता है, यदि हो यहॉ प्रतिरोधी पुरुषार्थ॥

दैववाद के अटल भरोसे मात्र आलसी ही रहते।
रोते-रोते जन्म गॅवाते, नित्य नए सकट सहते॥
किन्तु, वीर निज पैरो पर हो खडे जगत कॅपाते है।
चाहे कैसा कठिन कार्य हो झट आसान बनाते है॥

आत्मा की है प्रबल शक्ति, वह चाहे जो कर सकती है।
भाग्य-चक्र मे मन-चाहा सब उलट-फेर कर सकती है॥
रोने से क्या काम बनेगा ? अत यत्न करना चाहिए।
आध्यात्मिक बल-हेतु प्रभू को चरण-शरण गहना चाहिए॥

दीन-बन्धु ही मुझ दुखिया का सारा दुखडा टालेगे।
प्राणनाथ को मृत्यु-राक्षसी से बस वही बचा लेगे॥"

शुद्ध श्वेत परिधान पहन पद्मासन सुदृढ़ लगाया है।
अर्धोन्मीलित नयन बन्द कर श्रीजिन ध्यान लगाया है॥
प्रेम-मग्न हो लगी प्रार्थना करने भक्ति-समुद्र बहा।
'अर्हन्-अर्हन्' साँसो का स्वर मन्द-मन्द झनकार रहा॥

दासी का नाथ उद्धार करो,
जगदीश प्रभो,जगदीश प्रभो;
मै निराधार, साधार करो,
जगदीश प्रभो,जगदीश प्रभो!

आफत की बिजली कडकी है,
छाती धडधड कर धडकी है,
दृढ साहस का विस्तार करो,
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

बस मूच्छित-सा मृत-सा तन है,
निस्तेज हुआ निस्पन्दन है,
नव जीवन का सचार करो,
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

मुझ निर्बल केवल तुम ही हो,
मुझ निर्धन के धन तुमही हो;
मुझ अबला का उद्धार करो,
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

हे नाथ भँवर मे नैय्या है,
तुम बिन अब कौन खिवैया है.
देरी न करो झट पार करो.
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

क्षण-क्षण में दबती जाती हूँ,
अणु भी न उभरने पाती हूँ,
पापों का हल्का भार करो,
जगदीश प्रभो जगदीश प्रभो !

पति शूली चढाये जाते है,
निष्कारण मारे जाते है,
सकट में है कुछ सार करो,
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

सीता का सकट टारा था,
द्रोपदी का पट विस्तारा था,
मुझ पर भी क्यों न विचार करो,
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

अति विकट पहेली उलझी है,
जो नही किसी से सुलझी है;
शुभसत्य की जय-जयकार करो,
जगदीश प्रभो, जगदीश प्रभो!

देव-प्रार्थना करने से कुछ मन-दुर्बलता दूर हुई।
कातर अति अबला की छाती साहस से भर-पूर हुई ॥
"बाल्यकाल से पूर्ण अखंडित धर्म पतिव्रत पाला है।
मैने अब तक नही लगाया तिलभर धब्बा काला है ॥
क्यों न सत्य फल देगा मेरा, देगा, देगा, फिर देगा।
प्राणेश्वर को हँसी-खुशी से झट बेदाग छुडा लेगा ॥
अब तो पति के हाथो से हो सुखद अन्न जल पाऊँगी।
वर्ना मै इस आसन पर ही घुल-घुल कर मर जाऊँगी ॥"

सागारी संथारा अति ही दृढता-पूर्वक ग्रहण किया।
एक-मात्र जिनराज-भजन मे अविचल निज मन जोड दिया।।

देखा पाठक, पति-व्रता का जीवन ऐसा होता है।
आदर्श वीर सतियो का पावन, अखिल पाप मल धोता है ।।

सती साध्वी वही जगत में ललनाएँ यश पाती है।
दु:खकाल मे भी जो अपने पति से प्रेम निभाती है ।।

सदा एकसो सुख दुख मे परछाई ज्यो रहती है।
अर्धाङ्गी होने का सच्चा गौरव वे ही लहती है ।।

पतिव्रता के लिए स्वपति ही परम पूज्य परमेश्वर है।
हृदय-भवन का एक-मात्र वह अधिकारी हृदयेश्वर है।

चाहे पति हो रोगी, पीडित, दीन, दुखी, दुर्भागी हो।
प्रेम-भाव से पतिव्रता नित चरणो की अनुरागी हो ।।

भारत की ये गृह-देवी ही विश्व-वन्द्य गुण-गरिमा है।
शक्ति-शालिनी दुर्गा है, बस आर्य-जाति की महिमा है ।।

जब भी जो कुछ मन में आया, अनायास कर दिखलाया।
देवराज का रत्न-मुकुट भी निज चरणो मे झुकवाया ।।



सर्ग दस

पौरजनों का प्रेम

सेठानी की भी खबर, फैली नगर मँझार,
दुख में दुख उमड़ा मचा दुगुना हाहाकार।
कपिल पुरोहित का हुआ, सुनकर हाल बेहाल,
आँखो-आगे नाचने लगा शोक दे ताल।
चंपापुर के प्रमुख जन साथ लिए साधार,
सेठ छुड़ाने के लिए, पहुँचा राज-द्वार।

राजा जी को बड़े विनय से किया सभी ने अभिवादन।
प्रस्तुत करते मधुर भाव से नम्र निवेदन मन-भावन॥
"देव! आपने यह क्या सोचा, व्यर्थ उठा यह क्या रगडा?
सेठ सुदर्शन के पीछे निर्मूल लगा यह क्या झगडा?
झूठा, बिल्कुल झूठा है, जो अपराध लगाया है।
धोखा देकर किसी दुष्ट ने राजन्! तुम्हे बहकाया है॥
धर्म-परायण सेठ आपका, कैसे सत खो सकता है?
राजहस से कैसे वायस-कार्य नीच हो सकता है?

त्राहि-त्राहि मच रही नगर में, अति ही भीषण कलकल है।
क्या बाजारो गलियो मे, सर्वत्र यही इक हलचल है ।।
घर का घर बर्बाद हुआ, क्या तुम्हे और कुछ खबर नही ?
सेठानी ने संथारे की घोर प्रतिज्ञा अटल गही ।।
दयापात्र है दीन पुत्र, कुछ उन पर तो करुणा कीजे।
एकमात्र अवलम्ब सेठ के जीवन की भिक्षा दीजे ।।"

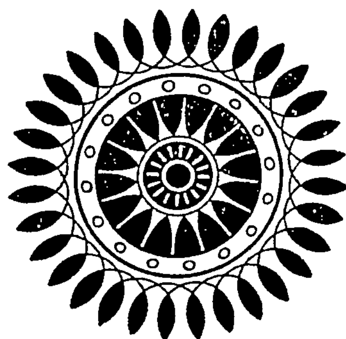
राजा उद्धतता से बोला, "अरे मूर्ख क्या कहते हो ?
न्याय-मार्ग का तुम्हें पता क्या, नित धंधों में रहते हो ।।
अत्याचारी पतिताचारी सेठ दंड के काबिल है।
धर्मी क्या, शैतान बड़ा है, धूर्तराज है, जाहिल है ।।"

राजन् ! बताएँ कैसा गुणवान है सुदर्शन,
धर्मज्ञ सज्जनो का अभिमान है सुदर्शन !
सौ कोस दूर रहता, जग की बुराइयो से,
जग में पवित्रता का उपमान है सुदर्शन !
दृढ सत्य का पुजारी, छल छन्द है न कुछ भी;
सादर सदाचरण पर बलिदान है सुदर्शन !
पूछो नगर-नगर मे सब ठौर इस की बाबत,
शीलव्रती जगत मे असमान है सुदर्शन !
मर्मज्ञ शास्त्र का है, विद्वान है, चतुर है,
सद्ज्ञान बाँसुरी की मृदु तान है सुदर्शन !
दीनो का है सहारा, प्यारा है दुखितो का,
पीड़ित अनाथ जन का प्रिय प्रान है सुदर्शन !
चपा की शान है और चपा की है जरूरत,
भूपेन्द्र ! आप का भी सम्मान है सुदर्शन !

स्वर्गीय देवता है, भगवान है हमारा,
नजरों मे आपकी जो शैतान है सुदर्शन।
झेलेंगे अब कहाँ तक अन्याय इस कदर हम;
गूगी प्रजा की सब कुछ जी-जान है सुदर्शन।

राजा बोला "बदमाशो! बस और न अब बकवास करो।
क्यो मेरे हाथों से अपना नाहक सत्यानाश करो॥
कामी लपट को तो करके स्तुति आकाश चढाते हो।
और मुझे तुम बातो-ही-बातो मे अधम बताते हो॥
मूर्ख तुम्ही लोगो ने इस का साहस अधिक बढाया है।
राजमहल मे भी जा पहुँचा, जरा नही सकुचाया है॥
छोड़ूगा हर्गिज न दुष्ट को, शूली पर लटकाऊँगा।
अगर शरारत की तो तुमको भी वह राह दिखाऊँगा॥"

प्राणों के भय से पुरवासी-वृन्द विवश चुपचाप हुआ।
सूझा कुछ भी नही अन्य पथ, किन्तु घोर परिताप हुआ॥



सर्ग ग्यारह

शूली से सिंहासन

सत्ता के अभिमान का होता जब अतिरेक,
हो जाते है नष्ट सब बुद्धि, विचार, विवेक।
राजा के मस्तिष्क में गूँज रहा है गर्व;
पर होता है क्या, पढ़ें आगे चल कर सर्व।
राजा तो क्या ईश भी अगर रुष्ट हो जाय,
धर्मवीर नर पर नहीं, कुछ भी पार बसाय।

पौर जनों को धमकाकर नरपाल सेठ की ओर हुआ।
आँखे अन्धी बनी क्रोध से गर्व-ज्वर का जोर हुआ॥
कहा सेठ से "मरने को अब हो जाओ जल्दी तैयार।
मै क्या मरवाता हूँ तुझ को, मरवाता तव पापाचार॥
हाँ, परन्तु इक राज-धर्म है, वह भी तो करना होगा।
प्राणदण्ड के अपराधी का मनोऽभीष्ट करना होगा॥
प्राणदान के बिना, और जो कुछ भी चाहो तुम माँगो।
ग्राम, नगर, भोजन, जो भी मन चाहे, वह ही माँगो॥"

हँस कर बोला वीर सुदर्शन–"नही तमन्ना कुछ भी है।
क्या माँगू जब मनो-भावना पूर्ण सभी पहले ही है॥
अगर आप कुछ देना चाहे, तो प्रभु केवल यह दीजे।
माँगे मेरी जो कुछ भी है, पूर्ण धराधीश्वर कीजे॥"

माँगे मेरी न दिल से भुलाना प्रभो!
पूरी करना, यह निज-प्रण निभाना प्रभो!

राज-राजेश्वर पिता है, प्रिय प्रजा सतान है,
न्याययुत सुख शान्ति देने से ही रहती शान है,
अत्याचारी न चक्र चलाना प्रभो!

घोर दुख सहती प्रजा है, खोलती न जबान है,
आपके हाथो मे उसकी नित्य रहती जान है,
सब को सस्नेह धीर बँधाना प्रभो!

देश मे जो भी कही, रोगी, दुखी असहाय हो,
आपकी सेवा के द्वारा, वे सभी ससहाय हों,
खुल्ले हाथो खजाना लुटाना प्रभो!

भूप और पतिताचरण का रात-दिन सा वैर है,
दुर्व्यसन आखेट आदिक हो, वहाँ क्या खैर है,
निर्मल स्वच्छ स्व-जीवन वनाना प्रभो!

न्याय मे अपने बिगाने का न होता भेद है,
भेद होता है जहाँ, होता वहाँ ही खेद है,
सच्चे ईश्वर के अग कहाना प्रभो!

राजपद की श्रेष्ठता, ले डूवते हैं जी-हुजूर,
कान का कच्चा वना देते है माया के मजूर,
ऐसी वातों मे हर्गिज न आना प्रभो!

दो घडी प्रभु-भक्ति भी करना कि झझट त्यागना,
'करं सकूं कर्तव्य पालन', हर सुबह यह माँगना,
सोते मानस को नित्य जगाना प्रभो !

मत्र-मुग्ध सी विस्मित अति ही सभा हुई सुनकर वाणी।
अन्तस्तल में धन्य-धन्य की उठी मधुर झकृत वाणी॥
पर, यह सत्यामृत राजा को पूर्ण हलाहल-रूप हुआ।
समझा मुझे चिढाता है, इस कारण राक्षस-रूप हुआ॥

द्वेष-भाव जब बढ़ जाता है तब विवेक कब रहता है ?
शुद्ध हृदय से कहा हुआ भी वचन अग्नि-सम दहता है॥

राजा जल्लादों से कहने लगा "इसे बस ले जाओ।
जाहिल है, क्या माँगेगा, झट शूली का पथ दिखलाओ॥
बुरी तरह से करो विडबित, नगर घुमाकर ले जाना।
जैसे भी हो धिक्कृत करना, नही जरा भी सकुचाना॥

राजा का आदेश प्राप्त कर, काला गधा मँगाया है।
शिर-मुडन और काला मुँह कर उस पर सेठ चढाया है॥
गले-सड़े टूटे जूतो का हार गले मे डाला है।
जो कुछ कर सकते, कर डाला, मन का जहर निकाला है॥

जल्लादों ने पकड़ रखा है, फूटा ढपडा वजता है।
आस-पास मे नगी तलवारों का पहरा चलता है॥
मध्य चौक में धर्म-वीर की इधर सवारी आई है।
उधर विकल जनता की भी अति भीड चतुर्दिश छाई है॥

पौर जनो को सबोधित कर कहे सेठ ने वचन अनूप।
महा पुरुष के पावन मन का होता है, ऐसा शुभरूप ।।

खुश रहो प्रिय बन्धुओ ! मै तो सफर करता हूँ आज,
शीश अपना सत्य भगवन् की नजर करता हूँ आज !
आप लोगो का शुरू से क्रीत दास बना रहा,
याद रखना, प्रार्थना यह स्नेह धर करता हूँ आज।
गलतियाँ जो भी हुई हो, कीजिए कण-कण क्षमा,
भूत की भूले सभी कुछ, दर गुजर करता हूँ आज।
प्रेम से रहना, न करना भूल कर झगडा फिसाद,
प्रेम सुख का मूल है, सन्देश-वर करता हूँ आज !
देह क्षणभगुर न जाने छूट जाए कब कहाँ,
धर्महित मर कर स्वय को मै अमर करता हूँ आज।

अन्तिम कडियाँ सुनते-सुनते बहा स्नेह का सिन्धु अतल।
हाहाकार मचा चहुँ दिश मे गूजा रोदन से नभ-तल ।।
देख सेठ की विकट दुर्दशा सिसक-सिसक सब रोते थे।
आँखो से अविराम अश्रु-निर्झर परिवाहित होते थे ।।

बोले "ठहरो सेठ हमे तुम कहाँ छोड कर जाते हो ?
सदा काल को हमें सर्वथा क्यो असहाय बनाते हो ?
पाएँगे जब कष्ट, भला फिर किसे गुहार सुनाएँगे ?
कहाँ प्रेम से सुखद सान्त्वनामय सहायता पाएँगे ?
आज हमारी चम्पा नगरी हा अनाथ बन जाएगी।
संरक्षक के बिना नित्य नव कष्ट भयंकर पाएगी ।।

राजा का अन्याय निरन्तर भीषण बढता जाता है।
क्या करे और क्या नही करे, कुछ भी न समझ में आता है।।
देता है हा हंत ! आप-से सज्जन को भी शूली-दंड।
राजगर्व में छका हुआ है, बना हुआ है अति उद्दण्ड।।
अन्तस्तल मे धधक रहे है, भीषण प्रतिहिंसा के भाव।
राज-दड से किन्तु त्रस्त है, नही मुखोद्घाटन की ताब।।"

धीर वीर था एक नागरिक गर्ज उठा कर दृढ हुँकार।
देख सका वह नही पाशविक निर्दयतामय अत्याचार।।
"दोषी था तो सेठ क्यो न न्यायालय के सम्मुख लाया ?
क्यो न दोष पूरा साबित कर जनसमूह को दिखलाया ?
केवल रानी के कहने पर कैसे शूली देता है ?
है यह सब षड्यन्त्र, क्योंकि यह दुखी जनों का नेता है।
अरे कायरो ! क्या रोते हो, तन मन क्लीबो-जैसा धार।
मर्द बने हो किस बिरते पर, सौ-सौ बार तुम्हे धिक्कार।।
चम्पापुर का प्राण तुम्हारे सम्मुख मारा जाता है।
पत्थर से तुम खडे, न कुछ भी किया कराया जाता है।।
सदाचार साकार सुदर्शन, उसकी यह दुरवस्था है।
कहो, तुम्हारे फिर जीवन की कितनी चिर सदवस्था है ?
होता है चहुँ ओर खुदी का तांडव, न्याय न मिलता है।
पशुओ से भी अधम आज हम सबका जीवन चलता है।।
अग राष्ट्र की कीर्ति एक दिन फैली थी जगती तल मे।
आज कही भी पूछ नही है, मरा चाहता है पल मे।।

भेड बकरियों जैसा कब तक जीवन भार निभाओगे ?
गूगे बनकर 'म्यॉ म्यॉ' करते कब तक शीश कटाओगे ।।
उठो गर्ज कर, बनो न दब्बू, सत्ता का गढ दहलादो ।
जनता की भी कुछ ताकत है, मत्त भूप को दिखलादो ।।
जीवन का क्या मोह, न्याय पर हँसते हँसते मर जाओ ।
अमर शहीदो मे स्वर्णाक्षर सें निज नाम लिखा जाओ ।"

ओजस्वी वक्तव्य सुना तो बिजली नस-नस दौड गई ।
जनता में विप्लव की भीषण आग सर्वतः फैल गई ।।
"पकडो, मारो, इन दुष्टो की हड्डी हड्डी चूर्ण करो ।
श्रेष्ठी को लो छुडा अभी, जो करना है वह तूर्ण करो ।"

युवको का दल गर्जन करता सैनिक दल की ओर बढा ।
रोम-रोम मे बड़े वेग से, प्रतिहिंसा का नशा चढ़ा ।।
सेठ सुदर्शन ने देखा जो रक्त-पात का विकट समय ।
बोले शान्ति-स्थापनाकारी वाणी स्नेह सुधारस-मय ।।
"ठहरो ठहरो, क्या करते हो ? होते हो क्यो उत्तेजित ?
निरपराध है बधिक सिपाही, करते हो क्यो उत्पीडित ?
स्वार्थ-विवश है, निद्य पेट के लिए सभी कुछ करते है ।
अन्तर् मे सब समझ रहे है, किन्तु भूप से डरते है ।।
आज्ञापालन ही, सेवक का धर्म, शास्त्र है बतलाते ।
क्रोधभाव अतएव श्रेष्ठ जन कभी न सेवक पर लाते ।।
पूर्ण शान्ति रक्खो, न कभी भी नाम मारने का लेना ।
बन्धु-रक्त से रंजित कर निज हस्त न मलिन बना लेना ।।

राजा क्या शूली देता है ? यह सब कलिमल अपना है।
स्वय हेतु हूँ निज सुख दुख का, व्यर्थ अन्य का सपना है ।।
मेरा अपराधी इस जगती-तल पर कोई नही कही।
प्रतिहिंसा का मेरे अन्तस्तल मे अणु भी भाव नही ।।
राजा भ्रम भूला है, कुछ भी नही सत्य का पता उसे।
दया करे भगवान, नही हो कष्ट-प्रद यह खता उसे ।।
रक्तपात करना पशुता है, मात्र भीरुता है मन की।
सज्जनता से अरि को वश करना, है शोभा सज्जन की ।।
भौतिक बल अन्यत्र कही भी नही शक्ति से झुकता है।
आध्यात्मिक बल के ही सम्मुख आकर आखिर थकता है ।।
राजा, तो क्या अखिल विश्व भी नतमस्तक हो जाता है।
आध्यात्मिकता का जब सच्चा भाव हृदय मे आता है ।।
गर्ज रहा है अब असत्य, पर, अन्त सत्य ही चमकेगा।
तम का पर्दा फाड पूर्ण-आलोक प्रभाकर दमकेगा ।।
भौतिक बल ही प्रबल शत्रु है बसा तुम्हारे अन्तर में।
हो सकते हो इसे जीत कर, विजयी तुम ससृति-भर में ।।
बचो, क्रोध कादर्य अनय दु साहस की दुर्बलता से।
बनो समर्थ अजेय अहिसक दृढ अध्यात्म-सबलता से ।।
मुझ पर है यदि प्रेम अटल तो मेरा ही पथ अपनाओ।
बदले का सकल्प न रक्खो, दुख न किसी को पहुँचाओ ।।"

अपने प्रिय श्रेष्ठी की वाणी सुनकर जनता शात हुई।
'धन्य अलौकिक शाति क्षमा' के रव की नभ मे गूज हुई ।।

सत्पुरुषो के विमल हृदय की जग मे कही न समता है।
प्राणशत्रु पर भी करुणा रखने की कैसी क्षमता है॥
जल्लादो ने हाँका गर्दभ, चली सवारी आगे को।
छोड चले हा हंत सेठजी अपने नगर अभागे को॥
जग-भक्षक श्मशान-भूमि मे घटा शोक की छाई है।
चारो ओर मृत्यु की छाया कण-कण-मध्य समाई है॥
प्राणनाशिनी लोह-निर्मिता शूली झल-झल करती है।
सेठ पास मे आए तो जनता अति कल-कल करती है॥
देख प्रजा-वैकल्य सेठ जी मन्द हास्य हँस कर बोले।
वाम-हस्त से पकडा शूली-दड अभय हृत्पट खोले॥

बन्धुओ ! शूली नही, यह स्वर्ग का शुभ द्वार है,
सत्य की पूजा का अभिनव यज्ञ-पथ तैयार है।
खौफ कुछ भी है नही, मेरे हृदय मे मौत का,
हर्ष का उमडा है चहुँ दिश पूर्ण पारावार है।
मै मरूगा क्या, मेरी खुद मौत ही मर जायगी,
मोक्ष मे अमरत्व का मेरे लिए भडार है।
मौत ऐसी भूमितल पर मिलती है सौभाग्य से,
सादर स्वागत हजारो, लाखो, क्रोडो बार है।
फूल-सी कोमल, सुतीक्षण नौक लगती है मुझे,
स्वर्ण-सिहासन पै चढने सी अजीब बहार है।
आप क्यो रोएँ, बजाएँ तालियाँ, खुशियाँ करे,
आपका भाई शहीदो मे हुआ शुम्मार है।
धर्म पर मरना न आया, काम-भोगो पर मरा,
मानवी तन पाके भी ससार मे भूभार है।

सत्य खुल कर ही रहेगा, दूर होगा सब असत्,
देखना कुछ क्षण मे होगा भूप खुद बेदार है ।
आप लोगों को मै अन्तिम भेट मे क्या आज दूं,
श्रेष्ट यह आदर्श ही मम प्रेम का उपहार है ।

धर्म-वीर का धर्म-रहस्य से पूरित था वक्तव्य महान ।
झलक रही थी निर्भयता, था भय का कही न नामनिशान ।।
जीवन पाने पर तो सारी दुनिया हड-हड हॅसती है ।
वन्दनीय है वह जो मरने पर भी रखता मस्ती है ।।
ऑधी के चक्कर मे टीबे बालू के उड जाते है ।
लेकिन, दुर्गम उन्नत पर्वत कभी न हिलने पाते है ।।
जनता की ऑखों के आगे मौत नाचती फिरती थी ।
किन्तु सुदर्शन के मुख पर तो अविचल शान्ति उमड़ती थी ।।

जल्लादो ने शूली की इस ओर योजना शुरू करी ।
और उधर कर जोड सेठ ने देव-वन्दना शुरू करी ।।

अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम् !
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम् !

पावन परम-पुनीत अनन्त अचल,
होता कलिमल का न जरा भी दखल
ज्ञान-ज्योति-प्रकाशित त्रिलोकी सकल,
मनसा वचसा अलक्ष्य स्वरूप विमल ।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम् !

प्रेमी भक्तो का प्यारा तू भगवान है,
ज्योति-पुज असीम प्रकाशमान है,

सारे विश्व का ज्ञाता अमित ज्ञान है,
सब से बढ कर निराली तेरी शान है।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!

पाया भेद तेरा कि बेडा पार है,
अक्षय अतुल सुखो का न् भडार है,
तेरे भक्तो का नित्य ही जयकार है,
होती अणु भी कही भी नही हार है।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!

भगवन्! भक्त-हृदय की यह है भावना,
सब जन सुख से करे नित्य धर्म-साधना,
पापाचरणो की दिल में न हो कामना,
सारा जगत सुखी हो, न हो यातना।
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!

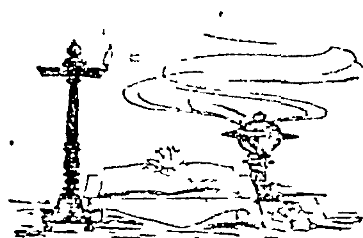
दया-मूर्ति! मै दर पै तुम्हारे खडा,
भव-व्याधि के व्रण से हृदय है सडा,
सभी भाँति विमूर्च्छित मुमूर्षु पडा,
कीजे करुणा, समय है अतीव कडा!
अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्!

मन्त्र-मुग्ध थी सारी जनता भक्ति-घटा घहराई थी।
पाप-ताप-मूर्च्छित हृदयो में शान्ति-सुधा लहराई थी॥
सागारी संथारा करके किया पाप का ताप शमन।
द्वेष भाव रक्खा न किसी पर, उमडा मैत्री का शुभ घन॥

जय-जय ध्वनि के साथ सेठ शूली पर चढते जाते थे।
मत्र-राज नवकार उच्चतम ध्वनि से पढते जाते थे॥

प्राण-हारिणी तीक्ष्ण अणी का भाग भयंकर आया है।
पल मे नक़्सा बदला अभिनव दृश्य दृष्टि मे आया है॥

स्वप्न-लोक की भाँति, लौह-शूली का दृश्य विलुप्त हुआ
स्वर्ण-स्तम्भ पर रत्न-कान्तिमय स्वर्णासन उद्भूत हुआ॥
सेठ सुदर्शन बैठे उस पर शोभा अभिनव पाते है।
श्रीमुख-शशि पर अटल शान्ति है, मन्द-मन्द मुसकाते है॥
मन्द सुगन्ध समीर चली, नव पुष्प-रासि की वृष्टि हुई।
पलक मारते मरघट मे, शुभ स्वर्गलोक-सी सृष्टि हुई॥
विस्तृत नभ में सुर-यानों का जमघट खूब सुहाया है।
देववृन्द के साथ इन्द्र ने चरणो शीश झुकाया है।
जहाँ-तहाँ बस. सुर-ललनाएँ दुन्दुभि वाद्य बजाती है॥
जय जय के गंभीर घोष से गगनांगण गुजाती है॥
हर्षमत्त जनवृन्द, सिन्धु की भाँति हिलोरे लेता है।
धन्य-धन्य एव जय जय से गगन उठाये लेता है॥



सर्ग बारह

आदर्श क्षमा

अखिल विश्व में धर्म का तेज प्रताप अखंड,
विद्रोही भी चरण मे गिरते त्याग घमंड।

न्यायालय मे खबर लगी, तो भूपति भी अति घबराया।
नगे शिर नगे पैरो ही ज्यों-था - त्यो दौडा आया ॥
हाथ जोड कर 'क्षमा-क्षमा' करता चरणो में आन पड़ा।
भयकातर आँखों से झर झर अश्रु-मेघ भी बरस पडा ॥
पशु-बल कितना ही भीषण हो, किन्तु अन्त मे होती हार।
प्राण-शत्रु भी चरणों में गिर आखिर बोले जयजयकार ॥
अटल सत्य का पक्ष चाहिए, फिर दुनियाँ में क्या भय है ?
मानव तो क्या, अखिल विश्व पर विजय अन्त में निश्चय है ॥
स्वर्णासन पर बैठ गर्व से भूप पूर्व क्या था बकता ?
आज देखिए, वही नम्र हो चरण पकड कर क्या कहता ?
"बुद्धि भ्रष्ट हो गई सर्वथा, नही जरा सोचा-समझा।
अन्दर बाहिर श्वेत हंस को मै काला कौव्वा समझा ॥

भूल गया सब न्याय-व्यवस्था, पागलपन अति ही छाया।
पापिन ने मँझधार डुबोया, जाल बिछाया, बहकाया॥
पूछताछ कुछ भी न करी, बस झट शूली का हुक्म दिया।
धर्ममूर्ति श्रीमान् आपका अति भीषण अपमान किया॥
अपराधी हूँ बेशक भारी, किन्तु दास पर क्षमा करें।
प्राणदान है हाथ आपके, दयासिन्धु! बस दया करें॥"

पास खड़ा था इन्द्र, कोप से पूरित सारा गात हुआ।
वज्र घुमाकर बोला "क्यो अब मृत्यु-त्रस्त बदजात हुआ॥
राजा होकर ऐसा भारी जुल्म प्रजा पर करता है!
नारी की बातों पर चल कर दुष्कृत सागर भरता है॥
सत्यमूर्ति श्रीमान् सुदर्शन को भी शूली लटकाया।
पत्थर सा जड बना, जरा भी नही हृदय में भय खाया॥
सावधान हो दुष्ट, पाप का फल अब शीघ्र चखाता हूँ।
मार वज्र तन चूर्ण बना कर, नामो निशां मिटाता हूँ॥"

आँखे पथरा गई भूप की, कम्पित वपु बेहोश हुआ।
कौन मृत्यु के सम्मुख आकर तुच्छ कीट बाहोश हुआ॥

विकट परिस्थिति देख सुदर्शन करुणा से छलछला रहे।
स्वर्गाधिप से स्नेह-सुधा-संसिक्त वचन इस भाँति कहे॥
"देवराज! यह क्या करते हो, किस पर वज्र चलाते हो?
पामर दीन हीन का नाहक क्यो तनु-रक्त बहाते हो॥
अज्ञानी है, भ्रम भूला है, दयापात्र है अतः सदा।
ज्ञानी जन भ्रम-भूलों पर यो क्रोध-भाव लाते न कदा॥

और अगर अपराधी है, तो भी मेरा अपना है।
आप दड दे, यह तो बिल्कुल व्यर्थ पंच खुद बनना है ॥
उपकारी पर उपकारी तो सारा ही जग बनता है।
किन्तु सुदर्शन अपकारी पर भी उपकारी बनता है।"

तदनन्तर राजा को संवोधन कर प्रेम-सुधा घोली।
बाह्य भाव से नही, हृदय की विमल भावनाएँ खोली ॥
"पूर्ण प्रेम के साथ क्षमा है, द्वेष न कुछ भी लाऊँगा ॥
राजन् ! बन्धुभाव से वह, पहले सा स्नेह निभाऊँगा ॥
दोष-आपका नही लेश है, यह सब निज कर्मो की लीला।
कर्म-दोष से पड जाता है काला शुद्ध स्वर्ण पीला ॥
राजन् निमित्त मात्र ही तुम हो, जो कुछ है सो मेरा है।
रोते क्यों हो, गया निशातम, आया स्वर्ण-सवेरा है ॥"

धन्य धन्य के घोष से, गूँजा सभी प्रदेश,
भक्तिमग्न जन-वृन्द में, था अति हर्षावेश।
राजा ने विनयावनत, होकर की अरदास,
'पुर मे शीघ्र पधारिए, हरिए शोकायास।'

बोले सेठ "मुझे पुर मे जाने से कुछ इन्कार नही।
जननी जन्मभूमि से बढ कर अन्य जगत मे सार नही ॥
किन्तु, आपको पहिले मेरा एक कार्य करना होगा।
अभयदान देकर रानी का मरण-त्रास हरना होगा ॥
मेरे कारण से कोई भी यदि प्राणी पीड़ा पाए।
देख न सकता हूँ, उसमे भी यदि अबला मारी जाए ॥"

राजा ने कर जोड सेठ से कहा "आप क्या करते है ?
कौन शिष्ट, आचार-भ्रष्ट कुलटा की रक्षा करते है ?
पापाचारी का न क्षणिक भी, जग मे जीवन अच्छा है ।
पापाचार बढेगा अति ही, अस्तु मरण ही अच्छा है ॥
अगर दंड दे दुष्टा को दुष्फल न चखाया जाएगा ।
तो फिर जग मे सती-धर्म का ध्वज कैसे फहराएगा ॥
और हुक्म कुछ करिएगा, यह तो बस कृपया रहने दे ।
दोष आपको क्या इसमे, मुझको नृप-शासन करने दे ॥"

बोले श्रेष्ठी "प्राण-दड से क्षमा कही श्रेयस्कर है ।
राजन् ! प्राण-दंड का देना अति ही घोर भयकर है ॥
दोष-नाश के लिए अगर उस दोषी को ही मार दिया ।
तो, यों समझो रोग-नाश के लिए रुग्ण ही नष्ट किया ।
प्राणदड से भौतिक तन का मात्र रक्त बह सकता है ।
क्षमा-दड से ही पापी का पाप-मैल धुल सकता है ॥
एक दुष्ट यदि सज्जन बन कर जीवित जग में रह पाए ।
तो अपने से लाखो को सत्पथ का पथिक बना जाए ॥"

आखिरकार सेठ का आग्रह राजा ने स्वीकार किया ।
'धन्य दयासागर' का सब जनता ने जय-जयकार किया ॥

मन्त्रीश्वर की याद हुई, झट कारागृह से बुलवाए ।
देखा जो अति दिव्य अलौकिक दृश्य अमित विस्मय पाए ॥

चमक उठा मुखचन्द्र-बिम्ब कुछ नही हर्ष का पार रहा।
रोम-रोम में अटल सत्य की श्रद्धा का परिवाह बहा ॥
हर्षमत्त हो लगे बोलने जय पर जय के घोष महान।
लाखों स्वर से प्रतिध्वनित हो, गूज उठा ब्रह्माण्ड-वितान ॥

सत्य की जग में एक विजय है,
तम का पर्दा फटा सत्य का हुआ दिनेश उदय है!

सत्य-कवच है जिसने पहना वह सर्वत्र अभय है,
अत्याचारी दभ-चक्र की होती अन्त प्रलय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!

सत्य रग मे रँगा हुआ यदि दृढ विश्वस्त हृदय है,
और चाहिए फिर क्या जग मे, क्षेम कुशल अक्षय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!

बना शीघ्र शूली से कैसा आसन काचनमय है,
सत्य-प्रताप असभव, सभव होता, अति विस्मय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!

धन्य सुदर्शन! सत्य आपका अचल चमत्कृति-मय है,
त्याग और वैराग्य भाव का उमडा सिन्धु सरय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!

सदाचार की जीवित प्रतिमा, यह प्रत्यक्ष-विपय है,
चपा का गुण-गौरव फैला त्रिभुवन मे अतिशय है,
सत्य की जग मे एक विजय है!

जयकारों के बीच सचिव का जब वक्तव्य समाप्त हुआ।
क्षमायाचना करने का तव नृप को अवसर प्राप्त हुआ ॥

हाथ जोड़ कर माफी मांगी, अपने निद्य दुराग्रह की।
क्षमादान कर मत्री ने भी रक्खी टेक सदाग्रह की॥
श्रेष्ठी की आज्ञा से राजा मंत्री दोनों गले लगे।
स्नेह-क्षीरसागर लहराया, द्वेष भाव सब दूर भगे॥

स्वर्ण-सिहासन-सहित पट्ट हस्ती पर सेठ सवार हुए।
पीछे उमड चला जन-सागर सादर जय जय कार हुए॥
नानाविध शस्त्रों से सज्जित सेना आगे चलती है।
बजते है बहु बाद्य, मधुरतम, पुष्प-सुराशि उछलती है॥
राजा स्वय सेठ के मस्तक पर निज छत्र लगाता है।
और सुबुद्धि मंत्रीश्वर हर्षित होकर चँवर ढुराता है॥
पाठक-वृन्द ! हर्ष का सागर इधर उमडता आता है।
और उधर भी देखे, क्योंकर हर्षार्णव लहराता है॥

अन्तरंग था सेवक श्रीयुत सेठ सुदर्शन का प्यारा।
देखा जो यह दृश्य, हृष्ट हो अपने मन मे यो धारा॥
"स्वामी से पहले जाकर मै करू सूचना हर्षमयी।
आनन्दित होगी सेठानी मातृ-स्वरूपा स्नेह-मयी॥"

स्वामी अपने धर्म-कर्म मे दृढ, दयालु जो होता है।
वेतन-भोगी नौकर को भी निजकुल-जन ही जोता है॥
'मै मालिक हूँ, यह गुलाम है' दृष्टि न हर्गिज रखता है।
मानवता के दृष्टि-कोण से अन्तर-भाव परखता है॥
सेवक भी स्नेहार्द्र-वश में एकमेक हो जाता है।
निज स्वामी के सुख-दुख में सुख-दुख की धार वहाता है॥

अस्तु, सेठ का दास शीघ्र ही श्रेष्ठी-गृह दौड़ा आया।
जो कुछ बीता हाल साफ सब सेठानी को बतलाया॥
विश्वासी नौकर से जब यह सुना हाल, तो हर्ष अपार।
रोम-रोम में बही प्रेम की गगा, जिसका वार न पार॥
ध्यान खोल कर एक-एक कर ज्ञात करी बाते सारी।
द्वार-देश पर जय-घोषो की गूजी वाणी तब प्यारी॥
स्वर्ण-थाल मे शीघ्रतया शुभ मंगल द्रव्य सजाया है।
बाहर आकर प्राणनाथ का स्वागत-साज रचाया है॥
स्वर्णासन पर गजारूढ़ जब पति के दर्शन किए पुनीत।
चित्त चमत्कृत हुआ, मधुरतम गूज उठा स्वागत सगीत॥

पधारो, स्वागत, प्राणाधार!
अद्‌भुत धर्म-महत्व दिखाया,
शूली स्वर्णासन प्रगटाया,
दर्शनार्थ सुरपति चल आया,
छोड कर देवालय-दरबार!
पधारो, स्वागत, प्राणाधार!

अटल, अचल, दृढ अपने प्रण मे,
पैर न रक्खा पापाङ्गण मे,
गूजी अधिकाधिक क्षण-क्षण मे,
सत्य की अति पावन जयकार!
पधारो, स्वागत, प्राणाधार!

आध्यात्मिक बल कैसा भारी,
अन्तर मे दृढ समता धारी,
भौतिक बल ने हिम्मत हारी,

देखकर स्तब्ध हुआ ससार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

कैसा प्रेम-पयोनिधि उमडा,
दूर हुआ सब रगडा-झगड़ा,
सत्य पुण्य-पथ सबने पकडा,
पाप का रहा नही कुविचार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

राष्ट्र भाल उन्नत सगर्व है,
मत्रमुग्ध जन-वृन्द सर्व है,
आज प्रेम का परम पर्व है,
हर्ष का कुछ भी वार न पार !
पधारो, स्वागत, प्राणाधार !

जयघोषों के बीच सेठ जी गज पर से नीचे उतरे ।
मिले परस्पर दम्पति सोत्सुक हृदय हर्ष से अति उभरे ।।
कैसा था आनन्द, स्नेह का दृश्य कलम क्या लिख सकती ?
स्नेह-सिन्धु की माप विश्व में शक्ति न कोई कर सकती ।।

देख प्रेम पति-पत्नी का सब लोग अमित अचरज पाए ।
हो गृहस्थ, तो ऐसा हो, वर्ना क्यो जग मे ललचाए ।।
दो तन है पर एक प्राण है, कैसा प्रेम वरसता है ।
स्वर्गलोक सा सौम्य सदन है, नित-नव मधुर सरसता है ।।
स्वर्गलोक भी क्या कर सकता है, श्रेष्ठी के गृह की समता ।
पुण्य-क्षय वाँ होता है, याँ सचय की नित तत्परता ।।

मुक्त-कंठ से कीर्ति-गान, नर नारी समुदित करते थे।
बीच-बीच में जयकारों से गगन विगुंजित करते थे॥

श्रेष्ठि-भवन के प्रागण में जन-सिन्धु उमड़ता था भारी।
राजाज्ञा से बैठ गए सब, लगी सभा अति ही प्यारी॥
स्वर्णासन पर गए बिठाए दोनों दम्पति सुखकारी।
शोभा कुछ भी कही न जाए, शोभा थी अति ही न्यारी॥

राजा और प्रजा का आग्रह श्रेष्ठी ने स्वीकार किया।
सदाचार पर दृढ होने का ओजस्वी वक्तव्य दिया॥
तदनन्तर दधिवाहन राजा और प्रजा ने गुण गाए।
अन्तर के सब कलिमल धोकर शुद्ध भाव सब ने पाए॥

तदनु गृहागत जनता का सस्नेह उचित सत्कार हुआ।
बिदा हुए सब लोग, सेठ का घर घर जय जयकार हुआ॥

पाठक! धर्मवीर नर जग मे यो जयजय-श्री पाते है।
अपने आप विरोधी के छल-छन्द नष्ट हो जाते है॥
सेठ सुदर्शन अपने पथ पर अटल अचल सोल्लास रहे।
दुःखसिन्धु से पार हुए, चहुँ ओर सौख्य के स्रोत बहे॥
स्वर्गोपम सुख-पूर्ण सदन मे सुखो सपरिजन रहते है।
धर्म ध्यान में अधिकाधिक अब तत्पर सव दिन रहते है॥



सर्ग तेरह

अङ्गराष्ट्र का उत्थान

पापी अपने पाप से, हो जाते खुद नष्ट,
छल-बल-पूरित शेमुषी, बनती बिल्कुल भ्रष्ट ।
अभया का सुनिए उधर, हुआ बुरा क्या हाल;
मृत्यु-जाल में फँस गई, भूल गई सब चाल ।

धूर्त-शिरोमणि रंभा दासी पहुँची थी शूली-स्थल पर ।
अभया ने सब बात देखने भेजी थी दिल में डर कर ।।
शूली से जब स्वर्णासन बदला तो कंपित गात हुआ ।
राजा पहुँचा तो सब कुछ ही होश-हवास समाप्त हुआ ।।

आँख बचा कर भगी शीघ्र गति से नृप-मंदिर मे आई ।
आँसू बरस रहे नयनो से अभया से यो बतलाई ।।
"सर्वनाश हो गया स्वामिनी ! बैठी हो क्या हर्षान्वित ।
मृत्यु शीश पर घूम रही है, रह न सकोगी अब जीवित ।।
'क्या कुछ हुआ ?' हुआ क्या, अपना पापपूर्ण घट फूट गया ।
माया-निर्मित तव अभेद्य गढ हाय पलक में टूट गया ।।

शूली स्वर्णासन में बदली बाल न बॉका जरा हुआ।
देव सहायक हुए, धर्म का जग मे कचन खरा हुआ॥
राजा जी भी नगे पैरो पहुँचे है भय-भ्रान्त विकल।
पड़े हुए है सेठ-चरण मे उपलमूर्ति से अटल अचल॥
'दुराचारिणी अभया है' यह कहते है सब नर नारी।
भेद खुल गया है छल बल का, निन्दा फैली अति भारी॥
राजा आने वाला है, अब काल सीस मॅडराता है।
जीवन-रक्षा का कोई भी पथ न ध्यान में आता है॥"

रानी ने यह कथन सुना तो कापा थर-थर तन सारा।
सन्नाटा सा बीत गया, बह चली नेत्र से जल-धारा॥
ऑखे पथरा गई और मस्तक ने चक्कर खाया है।
मक्कारी बदकारी का सब दृश्य सामने आया है॥

"हाय! हाय! ! भगवान! पडा यह क्या इकदम उलटा पॉसा।
सेठ साफ बच गया, हुआ अब मम जीवन का ही सॉसा॥
क्या मुझ को ही अपने खोदे कूवे मे पडना होगा ?
हॉ, अवश्य ही दुष्फल अपनी करनी का भरना होगा॥
कपिला की सगति मे पड कर जीवन भ्रष्ट बनाया, हा !
रानी बन कर भी अपयश का काला दाग लगाया, हा ! !
क्या जाने, अब किस कुमौत से राजा मुझको मरवाए ?
शूली दे अथवा नगी कर के कुत्तो से नुचवाए ?"

कहते-कहते अभया रानी पडी फर्श पर गश खाकर।
फूटा शिर, बह चला रक्त, तन लगा तड़फने इधर-उधर॥

रानी की यह विकट दशा लख रभा अति ही घबराई।
माया-जाल गूथने वाली तीक्ष्ण बुद्धि बस चकराई॥
और मार्ग कुछ नही समझ मे आया, छिप कर भाग गई।
सदा काल के लिए मोह चंपा नगरी का त्याग गई॥

पापी-सग सहायक भी हर्गिज न अछूता रहता है।
लौह-सग मे अग्नि-देव भी ताडन तर्जन सहता है।
होते है जो मार्ग-भ्रष्ट, वे नित गिरते ही जाते है।
ठोकर पर ठोकर खाकर भी नही सँभलने पाते है॥
एक गर्त से निकल दूसरे अन्धगर्त मे गिरते है।
जीवन भ्रष्ट बनाने का पथ अन्य मलिन ही गहते है॥

धक्के खाती रभा पहुँची नगर पाटली-पुत्रक मे।
पास रही हरिणी वेश्या के लगी उसी फिर लपझप मे॥

अभया का फिर हाल हुआ क्या, चलिए नरपति-मन्दिर मे।
पाप-दूत ने दिया न रहने अभया को तन-मन्दिर में॥
मूर्च्छा भग हुई रानी की रभा नजर न आई है।
विना सहायक के दुगुनी तव शोक-घटा घहराई है॥
"हा रभा! तू भी यो मुझ को छोड कष्ट मे चली गई।
आखिर धोखा दिया भयकर, तेरी भी मति भ्रष्ट हुई॥
तेरे ही बल पर मैने यह झूठा झगडा खडा किया।
आनद मे थी, व्यर्थ स्वय को कष्ट-जाल मे फँसा लिया॥
तू रहती तो वच भी जाती, अव कैसे वच पाऊँगी?
इस संकट में जीवन-रक्षक और कहाँ से लाऊँगी?

अपमानित होकर मरना तो जग में महा भयंकर है ।
'राजा जी मारें' इससे तो स्वय मरण श्रेयस्कर है ।"

अभया ने मरने को दिल में साहस की बिजली भरली ।
छत मे रस्सी बाँध, लगा गल फाँसी, निज हत्या करली ॥
पश्चात्ताप किया था, फलत: देवयोनि मे जन्म लिया ।
किन्तु कलंकारोपण ने अतिनिन्द्य व्यन्तरी रूप दिया ॥

ठाठ बाठ थे अभया के मन-मोहन सुर-बाला जैसे ।
आज देखिए फाँसी पर मृत देह झूलती है कैसे ?
पापवाटिका कुछ ही दिन तक खूब फूलती-फलती है ।
कर्मोदय का हिम पडने पर क्षण-भर मे ही जलती है ॥

श्रेष्ठी जी के धाम से, लौटे श्री भूपाल ,
सोच रहे थे चित्त मे, अभया का यो हाल ।

"अभया का अपराध सर्वथा ही अक्षम्य भयकर है ।
श्रेष्ठी को लाञ्छित करने का किया पाप प्रलयकर है ॥
पातिव्रत की मूर्ति बनी थी, मुझको भ्रम मे फँसा लिया ।
पडा रहा व्यामोह-जाल मे, नही जरा भी ध्यान दिया ॥
कैसे - कैसे घोर भयकर दुष्कृत मुझ से करवाए ।
सच्चरित्र श्रेष्ठी-जैसे भी सज्जन शूली चढवाए ॥
प्राणदंड से न्यून दंड, मै कभी न अभया को देता ।
दयामूर्ति यदि सेठ क्षमा का वचन न मेरे से लेता ॥
ससारी जीवन चंचल है, बनते और बिगडते है ।
धर्मी, पापी बनते है, फिर पापी, धर्मी बनते है ॥

श्रेष्ठी का आदर्श देख कर अभया अब तो सँभलेगी।
लज्जित होकर स्वयं स्वयं पर, स्वयं कुपथ सब तज देगी ॥
श्रेष्ठी जी को वचन दिया है, अतः न मर्म दुखाऊँगा ॥
द्वेष भाव अणु भी न रखूँगा, सादर स्नेह निभाऊँगा ॥"

करते-करते यों विचार, निज राजमहल मे नृप आए।
देखा दुःखद दृश्य, दया के भाव हृदय में भर आए ॥
"काल-चक्र ! तेरी भी जग मे क्या ही अद्‌भुत महिमा है।
पार न पा सकता है कोई, कैसी विकट वक्रिमा है ॥
विश्वमोहिनी सुर-बाला सा कैसा सुन्दर कोमल तन !
आज झूलता है फाँसी पर, करता तन मन में कंपन ! !
श्रेष्ठी ने तो क्षमा दिला कर दंड-यंत्रणा सभी ढँकी।
पाप-भार से दबी स्वयं ही, नही जरा भी उभर सकी ॥
'यादृक् करण तादृग् भरणं' उक्ति न अणु भी मिथ्या है।
जीवन-पथ में पाप पुण्य-गति रत्ती-रत्ती तथ्या है ॥
मोह-विकल ससार, जाल मकडी के तुल्य बनाता है।
अन्य फँसाने जाता है, पर, आप स्वय फँस जाता है ॥"

बुला दासियो को रानी का शव नीचे उतराया है।
कौन कौन दासी गायब है ? यह भी पता लगाया है ॥
रंभा का जब पता न पाया, भेद समझ मे आया है।
रानी ने उसके द्वारा ही यह षड्‌यन्त्र कराया है ॥

अभया रानी और सेविका रभा की यह बुरी ख़बर।
फैल गई द्रुत विद्युत-गति से चंपा नगरी मे घर-घर ॥

सभी प्रजाजन ने सत्पथ की एक-स्वर से बोली जय।
और दभ की, दुराचार को, दुष्कृत पथ की बोली क्षय ॥
भोग-वासनाओ पर सहसा घृणा-भाव सब में छाए।
सदाचार-जीवन के अविचल भाव हृदय मे सरसाए ॥

कि बहुना, अभया की राजा जी ने मृत-अन्त्येष्टि करी।
फैल रही थी जो भी गडबड उसकी शीघ्र समाप्ति करी ॥

अग राष्ट्र के पतन का, कंटक हुआ समाप्त,
होता है अब देखिए, कैसे गौरव प्राप्त ?

न्यायालय में एक समय नरपति ने सेठ बुलाया है।
जनता-हितकर वह पहले का कार्य, ध्यान मे आया है ॥
भूप तथा श्रेष्ठी ने मिल कर किया खूब गभीर विचार।
बनी योजनाएं जिनसे हो अगराष्ट्र का पुनरुद्धार ॥
एकमात्र श्रेष्ठी को सौपा उक्त कार्य का सारा भार।
श्रेष्ठी ने भी दिखा दिया यो भूतल पर ही स्वर्ग उतार ॥

नगर-नगर मे ग्राम-ग्राम मे खुले हजारों विद्यालय।
क्या युवती, क्या युवक, सभी पाते है शिक्षा नित्याक्षय ॥
प्रात साय ज्ञान-मन्दिरो में ज्ञानार्जन होता है।
नानाविध ग्रन्थो का वाचन कुमति-कालिमा धोता है ॥
औषध-गृह मे मुफ्त औषधी मिलती है सर्वत्र सदा।
व्याधि-ग्रस्त कोई भी रहता नही विवश सत्रस्त कदा ॥
शासन और न्याय सब प्रायः पचायत हो करती थी।
कष्टो की मरु-धरणी मे सुख-नदी-तरगे भरती थी ॥

भार करों का वृथा प्रजा पर था, वह बिल्कुल दूर किया ।
चमक उठा व्यापार अग का, लक्ष्मी ने आ बास किया ।।

कोई भी बेकार युवक नर, नही कभी भी रहता है ।
यथा योग्य निज कार्य नित्य ही पाकर सुख से हँसता है ।।

होता था न प्रकट या गुपचुप, कही कभी भी मदिरा-पान ।
नाममात्र से भी मदिरा के समझा जाता था अपमान ।।

जूआ, चोरी, और परस्त्रीगमन सर्वथा नही रहे ।
अग देश मे स्वच्छ समुज्ज्वल सदाचार के स्रोत बहे ।।

स्वप्नलोक मे भी दु.खो की कभी न छाया पडती थी ।
रात्रि दिवश जनता मे केवल सुख की वीणा बजती थी ।।

न्याय-निपुण अधिकारी-गण में रिश्वत का था नाम नही ।
क्रीतदास थे जनता के, था अकड-धकड का नाम नही ।।

धन्य सुदर्शन ! तूने अपना ध्येय पूर्ण कर दिखलाया ।
अग राष्ट्र का बन उद्धारक, अमर सुयश जग मे पाया ।।

क्या गाँवो, क्या नगरों में सब ओर सेठ की पूजा है ।
सफल किया नर जन्म आपसा जग मे और न दूजा है ।।



सर्ग चौदह

पूर्णता के पथ पर

नर जीवन की पूर्णता, नही मात्र गृह-क्षेत्र,
मुनिपद धारण श्रेय है, उघड़ें अन्तर नेत्र ।
जीवन के अपराह्ल मे, लेकर पूर्ण विराग,
उभय पक्ष साधन किए, धन्य सेठ महाभाग ।

धर्मघोष मुनिराज एकदा चम्पापुर मे आए है ।
बाहर उपवन में ठहरे, जन दर्शन कर हर्षाए है ॥
सेठ सुदर्शन जी भी पहुँचे वन्दन कर पूछी साता ।
धार्मिक जन का गुरु-दर्शन से हृदय हर्ष से भर आता ॥
धर्मघोष गुरु ने परिषद् मे दिया स्वप्रवचन निवृ ति-मय ।
प्रवचन क्या था अमृत बरसा, सबका गद्गद हुआ हृदय ॥

धर्म की पूँजी कमा ले,
कमाले जीवा, जीवन बन जायगा !
जीवन-पट है बेरँग कब से ?
सयम-रग चढाले, चढाले जीवा !

जग-उपवन में अपना जीवन,
पुष्प सुगन्ध बनाले, बनाले जीवा।

अखिल विश्व के दलित वर्ग की,
सेवा का भार उठाले, उठाले जीवा।

सोया पडा है अन्तर चेतन,
सत्सग बैठ जगाले, जगाले जीवा।

मोह-पाश के दृढ बन्धन से,
अपना चित्त छुडाले, छुडाले जीवा।

हो तू भला इतना कि शत्रु भी,
चरणो मे शीश झुकाले, झुकाले जीवा।

राग द्वेष का जाल बिछा है,
दूर से राह बचाले, बचाले जीवा।

'अमर' सुयश के बाद्य बजेगे,
सत्य की धूनी रमाले, रमाले जीवा।

सेठ सुदर्शन जी ने पूछा पूर्व जन्म का अपना हाल।
गुरुवर बोले अवधि ज्ञान से भेद पूर्व तमसावृत काल॥
"पूर्व जन्म में सेठ आप थे ग्वाल 'सुभग' आज्ञाकारी।
चपा में निज-जनक श्राद्ध 'जिनदास' सेठ के प्रिय भारी॥
सेठ निजालय पर गायों का करते थे बहु प्रतिपालन।
धनाभाव से त्रस्त दीन जन भी पाते थे पय पावन॥
गायों को तू सुभग सर्वदा वन मे लेकर जाता था।
प्रेम भाव से चरा-फिरा कर निज कर्तव्य निभाता था॥
एक समय की बात, विपिन मे ध्यानावस्थित मुनि देखे।
वृक्षमूल में शान्तमूर्ति दढ पद्मासन मे थे बैठे॥

मंत्रमुग्ध सा हुआ सुभग श्रीमुनिवर के कर प्रिय दर्शन।
शान्त, सौम्य हो गया आप ही तन्मय होकर चंचल मन ॥

उच्चस्वर से मन्त्रराज का पढकर प्यारा प्रथम चरण।
गगनाङ्गण में उडे तपस्वी लगा विलम्ब न कुछ भी क्षण ॥
ग्वाल सुभग भी चकित हुआ सुन लगा उसी दिन से रटने।
श्वास-श्वास के साथ मधुर झनकार लगी क्रमश: बढ़ने ॥

चमत्कार प्रत्यक्ष आँख से देख किसे विश्वास न हो ?
अन्धकारमय हृदय, गुहा में क्यो फिर ज्ञान प्रकाश न हो ?

पता लगा जब श्रेष्ठी को तो हृदय हर्ष से भर आया।
जैन धर्म के श्रावक-पद का क्रिया-काण्ड सब समझाया ॥
देकर सुविधा सभी तरह की धर्म-मार्ग में लगा दिया।
भेद भाव रक्खा न रच भी श्रेष्ठ स्वधर्मी बना दिया ॥

एक-दिवस सानन्द सुभग वन में जब गाय चराता था।
बहती सरिता पास एक थी सुन्दर दृश्य सुहाता था ॥
स्नान कार्य के हेतु, वृक्ष पर चढ कूदा सरिता जल में
जलाच्छन्न था तीक्ष्ण ठूठ वह लगा सुभग-उदरस्थल मे ॥
शुभ भावों से मरा और जिनदास सेठ के जन्म लिया।
पूर्व जन्म के स्वामी को ही जनक-रूप मे प्राप्त किया ॥

श्रेष्ठिवर्य तुम वही सुभग हो, क्या से क्या ऐश्वर्य मिला।
ग्वाल बाल से बने श्रेष्ठिवर पूर्णतया सुख-पुष्प खिला ॥
पूर्वजन्म की सस्कृति का इस भव मे यह विस्तार हुआ।
सदाचार की ज्योति जगादी, विस्मित सब संसार हुआ ॥

धर्माराधन कभी न निष्फल तीन काल में होता है।
एक मात्र इस ही के बल पर विश्ववन्द्य नर होता है ॥"

धर्म-घोष गुरु की वाणी से पूर्व जन्म का चित्र समस्त।
प्रतिबिम्बित हो उठा सेठ के मानस-दर्पण मे अभ्यस्त ॥

परिषद् में हो खड़े सेठ ने कहा—"धन्य गुरु ज्ञानी है।
जो कुछ तुमने कही, स्मृति में झलकी सभी निशानी है ॥
पूर्व जन्म मे जो कुछ बोया, उस का फल याँ पाया है।
जीवन-पथ में सभी ठौर 'करनी' का गौरव गाया है ॥
अस्तु आपकी सेवा में अब अग्रिम जन्म सुधारू गा।
त्याग शीघ्र गृहवास, श्रेष्ठतम मुनिपद का व्रत धारूँगा ॥"

धर्मघोष गुरु बोले—"सहसा नही शीघ्रता करिएगा।
समझ बूझकर भली भाँति, इस पथ पै निज पद धरिएगा ॥
साधुवृत्ति का ले-लेना, कुछ बच्चो का है खेल नही।
भोग-विलासी जीवन का याँ खाता बिल्कुल मेल नही ॥
त्याग-क्षेत्र के पूर्ण परीक्षित योद्धा तुम हो, नही कसर।
किन्तु हमारा सयम-पथ भी बडा विकट है, श्रेष्ठि-प्रवर ॥
भिक्षु-मार्ग पर चलना तो बस नग्न खड्ग पर धावन है।
जीवन्मृत ही चलता इस पर जो बहिरन्त. पावन है ॥"

भक्ति-नम्र हो कहा सेठ ने "प्रभो ! आपका सत्य वचन।
संयम-भार हिमाचल सा है, उठा न सकता दुर्बल मन ॥

आदि काल से, किन्तु, मनुज ही इसे उठाता आया है।
साहस हो तो, कुछ भी दुष्कर कार्य न जग में पाया है।।
मै भी तो हूँ मनुज साहसी, क्यों न भिक्षुपथ ग्रहण करूँ ?
अन्तस्तल से सदाकाल को क्यों न पापमल हरण करूँ ?
प्रभो ! आपकी सेवा मे रह कर सब कुछ बन जाएगा।
अधम सुदर्शन भी मुनि-पद के उच्च शिखर चढ़ जाएगा।"

वन्दन कर सोल्लास सेठ जी अपने घर पर आए है।
स्नेहवती सेठानी को निज भाव साफ बतलाए है।।
बात अचानक सुन पहले तो तन मन की सुध भूल गई।
शोक-सिन्धु में बही, विरह के दुख की मन मे शूल गई।।
बार-बार जब श्रेष्ठी जी ने प्रेम-भाव से समझाई।
हर्षान्वित हो तब मुनिपदवी लेने की आज्ञा पाई।।

राजा और प्रजाजन ने भी समझाने का यत्न किया।
किन्तु अन्त में श्रेष्ठी का सुविचार सभी ने मान लिया।।
पुत्रो को निज पद देकर, सब गेह-कार्य सँभलाया है।
न्याय नीति के साथ प्रजा के हित का पथ समझाया है।।

नगर-निष्क्रमण समारोह के साथ हुआ, वन मे आए।
धर्म-घोष गुरुवर से मुनिवर-पद के सुन्दर व्रत पाए।।
छोड दिया सम्बन्ध आज से वक्रमूर्ति जग-माया का।
काम सँभाला विश्व-हितकर, तजा मोह भी काया का।।
राजा और प्रजा-जन महती संख्या मे समुपस्थित थे।
श्रेष्ठी-मुख से सदुपदेश सुनने को अति-उत्कठित थे।।

ओजस्वी मीठी वाणी से नव मुनि ने उपदेश किया।
सभी जनो के हृदय-क्षेत्र मे बोधामृत-नद बहा दिया ।।

प्रतिक्षण क्षीण जीवन मे, अमर खुद को वना देना,
भविष्यत की प्रजा को, अपने पद चिन्हो चला देना।
दुखी दलितो की सेवा में, विनय के साथ जुट जाना,
अखिल वैभव बिना झिझके, बिना ठिठके लुटा देना।
असत्पथ भूल करके भी, कभी स्वीकार ना करना,
प्रलोभन मे न फँस कर, सत्य पथ पर सिर कटा देना।
परस्पर प्रेम से रहना, जगत मे प्रेम जीवन है,
वचाना प्रेम को, चाहे अमित सर्वस गँवा देना।
क्रमागत कुप्रथाओ का, भ्रमो का, मूढताओ का,
अध पाती निशा मानव-जगत मे से मिटा देना।
जगत मे सत्य ही केवल, अमर अविचल अटल वल है,
अत निज शीप भगवन सत्य के आगे झुका देना।
सहस्राधिक प्रयत्नो से 'अमर' कर्तव्यच्युत जग मे,
नया जीवन, नया उत्साह, नया युग ला दिखा देना।

श्री गुरुवर के साथ सुदर्शन मुनिवर ने अब किया विहार।
ज्ञानाभ्यासी बने श्रेष्ठ, फिर किया सत्य का विमल प्रचार।।
देश-देश में, नगर-नगर मे, गाँव-गाँव मे घूम फिरे।
पा कर के सद्बोध आप से भव्य अनेकानेक तिरे ।।

योग-साधना हेतु एकदा श्री गुरुवर से किया विचार।
दृढ़ साहस का अवलबन कर एकल पडिमा की स्वीकार ।।
शून्य वनो में, शैल-गुहाओं में अव निर्भय रहते थे।
आत्म-ध्यान में मस्त, प्रकृति के नाना सकट सहते थे ।।

मास-आदि अनशन व्रत का जब कभी पारणा आता था।
पावन दर्शन श्री मुनिवर का नगर-लोक तब पाता था ॥

नगर पाटलीपुत्र मनोहर, एक बार आए मुनिवर।
घूम रहे थे मथर गति से भिक्षाशन लेते घर-घर ॥
रभा ने देखा तो अति ही चकित खड़ी-की-खडी रही।
पूर्व दुख की ज्वाला भडकी, रहा द्वेष का पार नही ॥
पूर्व वैर-प्रतिशोधनार्थ वेश्या से बात बनाती है।
सत्पथ-भ्रष्ट बनाने को अब फिर से जाल बिछाती है ॥

बातो-ही-बातो में कुछ ऐसा चित्र चलाया है।
नारी-वर्णन पर से वर्णन त्रियाचरित का आया है ॥
"अखिल विश्व में त्रियाचरित का बल ही दुर्जय होता है।
शीघ्र यथेच्छित त्रिभुवन-भर का पुरुषवर्ग वश होता है ॥
पर ऐसे भी धार्मिक जन है, जो न कभी वश मे आते।
त्रिया-चरित के छल-बल सारे शीष पीट कर रह जाते ॥"

कहा तुनक कर हरिणी ने—"यह कभी नही हो सकता है।
कैसा भी हो पुरुष, किन्तु वह हम पर सब खो सकता है ॥"

रभा ने इस पर श्रेष्ठी का सारा वृत्त सुनाया है।
डर न जाय, अतएव शूली-आदिक का हाल छुपाया है ॥
और कहा—"देखो, वह श्रेष्ठी आज साधु बन कर फिरता।
भिक्षा माग रहा घर-घर से, उत्कट है तप की स्थिरता ॥"

वेश्या हँस कर बोली—"रंभा ! तूने भी यह खूब कही ।
राज-महल में इन बातों की आ सकती है गन्ध नही ।।
मै गणिका हूँ, परम्परा से यह ही पेशा मेरा है ।
जगत्प्रतिष्ठित सुजनों को भी फँसा जाल में गेरा है ।।
कैसे झटपट रूप-दोप पर यह पतंग भी गिरता है ?
काम असीम महासागर है, देखूँ कैसे तिरता है ?"

वेश्या ने जाकर मुनिवर को भक्ति-भाव से प्रणति करी ।
"मुझ घर भी भिक्षार्थ पधारे" साग्रह यों विज्ञप्ति करी ।।
सरल-चित्त मुनिराज, पता क्या उन्हे, तुरंत पधार गए ।
वेश्या ने समझा, अब क्या है, सभी मनोरथ पूर्ण हुए ।
तीन दिवस तक मुनिवर जी को रुद्ध किया, घर मे रक्खा ।
काम-वासना के निज कुत्सित-जाल फँसाने में रक्खा ।"

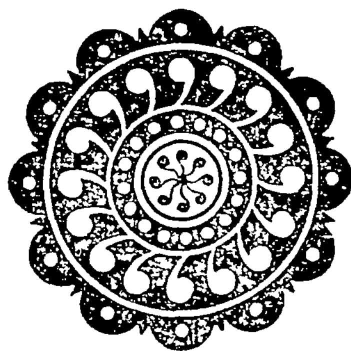
जो करना था किया, किन्तु आखिर मे हरिणी स्वयं थकी ।
अटल मेरु सा हृदय व्रती का तिलतुष-मात्र न डिगा सकी ।।

पूर्णरूप से हुई प्रभावित, हाथ जोड कर नमन किया ।
"क्षमा करे अपराध, आपको मैने जो यह कष्ट दिया ।"
शान्त मूर्ति ने क्षमादान कर, दिया एक धार्मिक प्रवचन ।
जाग उठा सोते से रंभा वेश्या का द्रुत अन्तर मन ।।

श्रावक के व्रत धारण कीने, पूर्ण शील का नियम लिया ।
दोनों ने ही दुराचार का पंथ सदा को त्याग दिया ।।

आध्यात्मिक बल अनुपम बल है, कही न इसकी समता है।
पापात्मा को धर्मात्मा करने की अविचल क्षमता है॥

दो जीवो का महाभयकर पतन-गर्त से कर उद्धार।
क्षमा और करुणा के सागर मुनि ने वन को किया विहार॥



सर्ग पन्द्रह

पूर्णता

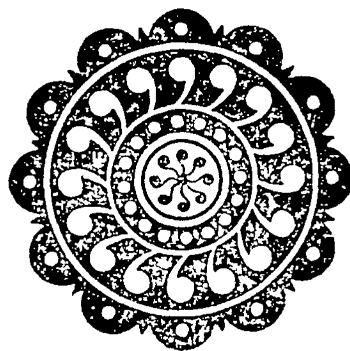
पूर्ण त्याग की साधना, करती कलिमल चूर्ण,
हो जाता पामर मनुज परमात्मा प्रतिपूर्ण।

मानव-भव के तुल्य विश्व में और न वस्तु अनूठी है।
जो कुछ महिमा है, इसकी है, और बात सब झूठी है॥
स्वर्ग-लोक के श्रेष्ठ देव भी एतदर्थ नित झुरते हैं।
पाएँ कब नर-जन्म मुक्तिप्रद, यही कामना करते हैं॥
जीवात्मा बन बहुरूपिया लख चौरासी रुलता है।
मुक्ति-द्वार यदि खुलता है तो मात्र यही पर खुलता है॥

मानव-भव का लक्ष्य नही है, भव-सागर मे रुक रहना।
जाना परले पार, भले ही कष्ट पड़े कुछ भी सहना॥
वन्दनीय है पुरुपरत्न वे, करते है जो इन्द्रिय-जय।
नष्ट समूल वासना-विष कर, पाते मुक्ति अमृत निर्भय॥
पूर्ण त्याग का मार्ग सुदर्शन मुनि ने भी अपनाया है।
पाया है लोकोत्तम जिन-पद सफल नृजन्म वनाया है॥

आध्यात्मिक बल अनुपम बल है, कही न इसकी समता है।
पापात्मा को धर्मात्मा करने की अविचल क्षमता है॥

दो जीवो का महाभयकर पतन-गर्त से कर उद्धार।
क्षमा और करुणा के सागर मुनि ने वन को किया विहार॥



अकस्मात एक दिन फिरती मुनि-समीप मे आ निकली ।
दर्श-मात्र से वैर जगा, कर पूर्व-स्मरण अति ही मचली ।।
"अरे वही है, यह तो पापी सेठ सुदर्शन अभिमानी ।
मैने सब कुछ कहा करा, पर एक नही इसने मानी ।।
रानी थी मै तो, मेरे को इसी धूर्त ने नष्ट किया ।
भय-विह्वल कर आत्म-हनन का अति ही भीषण कष्ट दिया ।।
आदि काल का धर्म-धूर्त, फिर आज साधु बन बैठा है ।
धर्म-मूढ लोगो को ठगने मायार्णव मे पैठा है ।।
पूर्व जन्म की आज वासना पूर्ण करूगी जी-भर कर ।
देवी हूँ, अति दिव्य शक्ति है, क्यो न बनेगा मम किकर ।।"

वन मे मादक सरस सुगन्धित ऋतु वसंत लहराया है ।
त्याग और वैराग्य उड़ाने का सब साज सजाया है ।।
माया-बल से अनुपमेय अति सुन्दर रूप बनाया है ।
गगनागण से उतर विमोहक हाव-भाव दर्शाया है ।।
"तपोमूर्ति ऋषिराज ! तुम्हारा धन्य-धन्य तप धन्य अमल ।
पूर्ण-पुण्य के योग इसी भव मे ही द्रुत हुआ सफल ।।
स्वर्ग-लोक से स्वय इन्द्र ने मुझको यहाँ पठाई है ।
तप-द्वारा जो सुख चाहा था, दासी देने आई है ।।
आँख खोल कर जरा देखिए, देवी कैसी होती है ?
पूर्ण-तपोधन सत जनो को सुखप्रद कैसी होती है ?"

ध्यान-मग्न मुनि के मानस मे आया अणु भी क्षोभ नही ।
प्रलयानिल से मेरु महीधर हिल सकता है भला कही ।।

वेश्या को प्रतिबोध दान कर वन में आसन लाया है।
आत्म-चिन्तना करते-करते यह विचार मन आया है॥
"अरे सुदर्शन ! अब भी तुझ मे बहुत बडी दुर्बलता है।
जहाँ-कही भी तू जाता है,यह प्रपच क्यो चलता है ?
राग द्वेष की निद्य भावना तुझे देख क्यो उठती है ?
व्यर्थ विचारी महिलाएँ क्यो काम-शल्य से कुढती है ?
बाहर जो होता है उसका बीज हृदय मे ही होता।
प्राय: निज मन हो प्रतिबिम्बित औरो के मन मे होता॥
अस्तु, हृदय से पाप कालिमा का सब चिन्ह मिटाऊँगा।
पूर्णतया परिशोधन कर स्फटिकोज्वल स्वच्छ बनाऊँगा॥"

आध्यात्मिक संकल्पो का, जब हुआ हृदय मे शुभ विस्तार।
जग-प्रपच-मूलापहारिणी अटल प्रतिज्ञा की स्वीकार॥
"अब से केवल-ज्ञानोदय तक नही नगर में जाऊँगा।
भोजनादि सब अटवी मे ही पथिकादिक से पाऊँगा॥"

शून्य भयावह वन में निर्भय सिह-समान विचरते है।
उग्र तपश्चरण के द्वारा कर्मांकुर क्षय करते है॥

एक समय की बात, एक कानन में पहुँचे मुनिवर।
ध्यान लगाया सघन कुज मे चचल चित्त अचचल कर॥
अभया रानी बनी व्यंतरी, इसी विपिन मे फिरती थी।
क्रूर भाव के कारण याँ भी पाप-पिड ही भरती थी॥

अकस्मात एक दिन फिरती मुनि-समीप मे आ निकली ।
दर्श-मात्र से वैर जगा, कर पूर्व-स्मरण अति ही मचली ॥
"अरे वही है, यह तो पापी सेठ सुदर्शन अभिमानी ।
मैने सब कुछ कहा करा, पर एक नही इसने मानी ॥
रानी थी मै तो, मेरे को इसी धूर्त ने नष्ट किया ।
भय-विह्वल कर आत्म-हनन का अति ही भीषण कष्ट दिया ॥
आदि काल का धर्म-धूर्त, फिर आज साधु बन बैठा है ।
धर्म-मूढ लोगो को ठगने मायार्णव मे पैठा है ॥
पूर्व जन्म की आज वासना पूर्ण करूगी जी-भर कर ।
देवी हूँ, अति दिव्य शक्ति है, क्यो न बनेगा मम किकर ॥"

वन मे मादक सरस सुगन्धित ऋतु वसत लहराया है ।
त्याग और वैराग्य उड़ाने का सब साज सजाया है ॥
माया-बल से अनुपमेय अति सुन्दर रूप बनाया है ।
गगनांगण से उतर विमोहक हाव-भाव दर्शाया है ॥
"तपोमूर्ति ऋषिराज ! तुम्हारा धन्य-धन्य तप धन्य अमल ।
पूर्ण-पुण्य के योग इसी भव मे ही द्रुत हुआ सफल ॥
स्वर्ग-लोक से स्वय इन्द्र ने मुझको यहाँ पठाई है ।
तप-द्वारा जो सुख चाहा था, दासी देने आई है ॥
आँख खोल कर जरा देखिए, देवी कैसी होती है ?
पूर्ण-तपोधन सत जनो को सुखप्रद कैसी होती है ?"

ध्यान-मग्न मुनि के मानस मे आया अणु भी क्षोभ नही ।
प्रलयानिल से मेरु महीधर हिल सकता है भला कही ॥

कालरात्रि-सम क्रुद्ध पिशाची का अभया ने रूप धरा।
काँप उठे वन, गिरि, पृथ्वीतल प्रलयकाल-सा दृश्य करा ॥
नग्न खड्ग युग कर में लेकर बड़े जोर से धमकाया।
भोषण माया-जाल बिछाकर पूर्ण मृत्यु-भय दिखलाया ॥

दैवी छल-बल गर्वमत्त इस ओर भयकर बाधक है।
शान्तमूर्ति उस ओर अकेला निश्चल निष्कल साधक है ॥
वज्र-भित्ति पर लौह-घात का, होता है क्या कभी असर ?
ससारी छल-बल से क्यो कर डिग सकता है मुनि-प्रवर ?

ज्यों-ज्यो अभया अधिकाधिक अत्युग्र ताडना करती है।
त्यो-त्यो मुनि-मानस में शुक्ल-ज्योति अतीव उभरती है ॥
पूर्ण दशा पर शुक्ल ध्यान-बल पहुँचा तो भगवान हुए।
केवलज्ञान अखडित प्रगटा, नष्ट अखिल अज्ञान हुए ॥
केवल–महिमा करने को सुर-वृन्द स्वर्ग से आया है।
दुदुभि-बाद्य बजे नभ-तल मे गन्धोदक बरसाया है ॥

देव-सभा मे श्रीजिन बोले वाणी मीठी सुधा-भरी।
आत्म-शुद्धि का मार्ग बताया धर्मामृत की वृष्टि करी ॥
"अखिल विश्व में एक मात्र निज कर्मों की ही प्रभुता है।
कर्म-पाश मे फँसा विवश जग पाता गुरुता लघुता है ॥
प्रति-आत्मा मे वीज छुपे है निष्कलंक भगवत्ता के।
कर्म-उपाधि नष्ट हो, तब हो दर्शन निजी महत्ता के ॥

आप और मै सभी एक है, मात्र उपाधि मिटा दीजे।
भोग-मार्ग तज क्रमशः निज को श्रीभगवान बना लीजे॥
गुण-पूजा का यह उत्सव है, अतः सुगुण अपना लीजे।
'परगुण-महिमा निज-गुण प्रगटाने में है' न भुला दीजे॥"

वाणी सुन कर हृदय व्यंतरी का भी सहसा पलट गया।
दुर्भावों का क्षेत्र, बना अब सद्भावों का क्षेत्र नया॥
हाथ जोड कर श्रीजिन प्रभु से क्षमा प्रार्थना की सादर
पश्चात्ताप किया कलि-मल का आत्म-भावना-विमलंकर॥

क्षमा-सिन्धु श्रीजिन ने भी परिपूर्ण क्षमा का दान किया।
बोधिज्ञान दे अभयात्मा को दृढ सम्यकत्वी बना दिया॥
देवो को जब पता चला तो, चहुँ दिशि जय-जयकार हुआ।
धन्य-धन्य है वीतरागता, अभया का उद्धार हुआ॥

अन्धकार-संत्रस्त प्रजा को, ज्ञानज्योति-रवि दिखलाया।'
घूम-घूम कर देश-देश मे सदाचार-पथ बतलाया॥
धर्मान्दोलन करते-करते मोक्ष-काल जब आया है।
योग-निरोधन कर अजरामर 'सिद्ध' 'मुक्त' पद पाया है॥
एक ग्रन्थ अनुसार पाटलीपुत्र नगर ही मन-भावन।
सुप्रसिद्ध निर्वाण—भूमि है सेठ सुदर्शन की पावन॥

❁

सर्ग सोलह

उपसंहार

पाठक-वृन्द ! सुदर्शन-जीवन पूर्ण आपके सम्मुख है।
आदि, मध्य, पर्यन्त जो कि सर्वत्र कुवृत्त-पराङ्मुख है ॥
मानव-जीवन किस प्रकार से सफल बनाया जाता है ?
सेठ सुदर्शन का जीवन बस वही प्रकार बताता है ॥
विश्व-पूज्य मानव की केवल यही एक है दुर्बलता।
कामवासना का दावानल मन मे अति भीषण जलता ॥
श्रेष्ठी-सम जो काम-जयी बन, मन पर अंकुश रखता है।
वह नर, नारायण बनता है, तीन लोक में पुजता है ॥

उक्त कथा के अन्य दृश्य भी शिक्षाप्रद है अति भारी।
धैर्य, दया, उपकार आदि गुण जीवन मे है सुखकारी ॥
धर्म-कथा का पठन श्रवण कब अन्तर कलिमल धोता है ?
जब चरित्र-नायक का जीवन निज-जीवन मे होता है ॥
पाठक वृन्द ! आप से केवल यह मम नम्र निवेदन है।
सदाचार के पथ पर चलिए, सुधरे जिससे जीवन है ॥

स्थानकवासी-जैन-संघ में, पूज्य 'मनोहर' बड़-भागी।
धीर, वीर, गम्भीर संयमी, हुए प्रतिष्ठित जग-त्यागी ॥
कष्ट सहन कर किए अनेको ग्राम नगर जन-प्रतिबोधित।
गच्छ आपसे चला 'मनोहर' सयम-पथ में अतिशोभित ॥
शास्त्राभ्यासी उग्र तपस्वी पूज्यश्री मुनि मोतीराम।
उक्त गच्छ के थे अधिनायक पाया यश अनुपम अभिराम ॥
अन्तेवासी श्रेष्ठ आपके पृथ्वीचन्द्र जी गुरुवर है।
जैनाचार्य - पदालंकृत है, गच्छ-मनोहर-दिनकर है ॥
श्रद्धास्पद गणिवर्य श्याममुनि भद्रस्वभावी गुण-धारी।
पूज्य श्री के साथ हुआ है चौमासा मंगल-कारी ॥
भारत - भूषण शतावधानी रत्नचन्द्र जी गुजराती।
साथ विराजे है सद्गुण की महिमा है अति मन-भाती।
पूज्य-पाद-पद्मालि 'अमर' मुनि ने यह ग्रंथ बनाया है ॥
सेठ सुदर्शन जी का जीवन-चरित काव्य में गाया है।
विक्रमाब्द शर निधिनिधि विधु में शुक्ल अष्टमी मंगसिरमास।
पूर्ण किया है नगर आगरा 'लोहा मंडी' में सोल्लास ॥



धर्मवीर सुदर्शन

पर

अभिमत



कविसम्राट् श्री गयाप्रसाद जी शुक्ल 'सनेही' :

यह एक जैन महात्मा का पद्य-बद्ध जीवन-चरित्र है। रचना सरल और सुबोध है। छन्द वही है जो राधेश्याम की रामायण मे प्रयुक्त हुआ है, इसलिए सर्व-साधारण को और भी रुचिकर होगा। कही-कही तो वर्णन बहुत उत्कृष्ट है, जैसे —

दम्पति प्रेमानन्द से करते काल व्यतीत।
पूरी लय पर चल रहा गृह-जीवन सङ्गीत॥

महात्माओ का चरित्र यो भी रोचक होता है, फिर कविता मे होने से तो कहना ही पडता है कि—

"सोनो औ सुगन्ध तो मे दोनो देखियतु है"



स्व० बाबू गुलाबराय जी, एम० ए० :

.... पुस्तक में पशुबल के ऊपर नैतिक बल की विजय दिखाई गई है। प्राचीन युग में भी निष्क्रिय प्रतिरोध अत्याचार के दमन में काम आता था। सत्य के दृढ प्रतिज्ञो को इस पुस्तक के पढने से शान्ति और सन्तोष मिलेगा। सत्यारूढता कभी निष्फल नही जाती। . . .



कविरत्न पं० हरिशकर जी शर्मा :

धर्मवीर सुदर्शन, जैन समाज मे एक महान धर्म-प्राण महात्मा हुए हैं·······इन्ही की पद्यात्मक जीवनी प्रस्तुत पुस्तक मे लिखी है। मुनि 'अमरचन्द्र' जी उदीयमान कवि है। आपकी कविता सुन्दर, सरल तथा ओजपूर्ण है। वर्णन-शैली मोहक है। ·······अमर कवि की लेखनी का प्रभाव पाठक को अपनी ओर सहसा आकृष्ट कर लेता है। मुझे जैन मुनि श्री अमर जी की ऐसी सुन्दर कविता देख कर बडी प्रसन्नता हुई ······· ।



पं० हरिदत्त जी वेदान्ताचार्य सप्ततीर्थ :

मधुरमिन्दु-कला-कलनादपि
कलमहर सुर-सिन्धु-जलादपि ।
सुविमल ललित कविताकुल
जयति काव्यमदस्तु 'सुदर्शनम्' ॥



कविवर श्री विश्वम्भरनाथ जी 'कौशिक' .

धर्मवीर सुदर्शन मैंने देखा। ··· ·रचना अच्छी है। पद्यो में लालित्य है और कथानक में सदाचार का महत्त्व दिखाया गया है।··· ····पुस्तक उपादेय है।



कविश्री के अन्य काव्य-ग्रन्थ

काव्य

- सत्य हरिश्चन्द्र

कविता-सग्रह

- अमर माधुरी
- कविता-कुञ्ज
- अमर जैन पुष्पांजलि

अध्यात्म गीत

- संगीतिका
